‘DO MURDON KE LIYE GULDASTHA’ MEIN SAMAJIK VISAMATA

Dissertation submitted to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the degree

MASTER OF PHILOSOPHY

IN

HINDI

By

NRUSINGHA BEHERA, M.A.

Regn. No.10HHHL20

2011

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

(P.O.) Central University, Gachibowli

Hyderabad – 500046

Andhra Pradesh

India

‘DO MURDON KE LIYE GULDASTHA’ MEIN SAMAJIK VISAMATA

(Dissertation submitted in partial fulfillment of the requirement for the award of Master of Philosophy in Hindi)

2 0 1 1

By

NRUSINGHA BEHERA, M.A.

10HHHL20

Supervisor
Prof. Noorjahan Begum
MA (Hindi, Sanskrit), Ph.D., D.Lit.
Professor,
Deptt. of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad,
Hyderabad - 500046

Head
Prof. Ravi Ranjan
Ph.D.
Professor,
Deptt. of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad,
Hyderabad - 500046

Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad,
Hyderabad - 500046

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में सामाजिक विषमता

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम.फिल. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

2011

प्रस्तुतकर्ता

नृसिंह बेहेरा

निर्देशिक

प्रो. नूरजहाँ बेगम

एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत) पीएच.डी., डी.लिट्

प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद – 500046

विभागाध्यक्ष

प्रो. रवि रंजन

पीएच.डी.

प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदाराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद – 500046

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद - 500 046

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **“ ‘DO MURDON KE LIYE GULDASTHA’ MEIN SAMAJIK VISAMATA” (“ ‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में सामाजिक विषमता”),** submitted by **Nrusingha Behera** bearing Regd. No.10HHHL20 in partial fulfillment of the requirements for the award of Master of Philosophy in **Hindi** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

The dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma

Signature of the Supervisor

Head of the Department

Dean of the School

DECLARATION

I, Nrusingha Behera hereby declare that this Dissertation entitled **" 'DO MURDON KE LIYE GULDASTHA' MEIN SAMAJIK VISAMATA" (" 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में सामाजिक विषमता ")** submitted by me under the guidance and supervision of **Prof. Noorjahan Begum ,** Professor, Department of Hindi, School of Humanities, University of Hyderabad, Hyderabad is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature:

Date :

Name: Nrusingha Behera
Regd. No. 10HHHL20
University of Hyderabad
Place : Hyderabad

‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में सामाजिक विषमता

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना i - vi

प्रथम अध्याय **1 - 37**

सामाजिक विषमता से तात्पर्य एवं स्वरूप

1. सामाजिक विषमता की अवधारणा

 1.1 सामाजिक विषमता के कारण

  1.1.1 पारिवारिक तनाव

  1.1.2 आर्थिक परिस्थिति

  1.1.3 परिवेश

  1.1.4 मित्रों का प्रभाव

2. भारतीय समाज का परंपरागत रूप

 2.1 धर्म शब्द का मूल अर्थ

 2.2 धर्म शब्द का विकास

 2.3 आधुनिक परिपेक्ष्य में धर्म

 2.4 अर्थ

 2.5 काम

  2.5.1 काम का स्वरूप

  2.5.2 काम आधुनिक संदर्भ में

 2.6 मोक्ष

3. भारतीय समाज का आधुनिक रूप

 3.1 अर्थ तथा काम प्रधान समाज

 3.2 धनोपार्जन के विषम रूप

 3.3 विषम यौन संबंध

3.4 अपराधीकरण

3.5 माफ़िया

द्वितीय अध्याय **38 - 76**

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में धनोपार्जन के विषम रूप तथा परिणाम

1. ईमानदारी (सामाजिक) से धनोपार्जन

2. बेईमानी (असामाजिक) से धनोपार्जन

1. परिणाम

1.1 अपराधीकरण

1.1.1 अपराधीकरण के कारण

1.1.1.1 आर्थिक कारण

1.1.1.2 शैक्षिक संस्थाओं के विषम रूप

1.1.1.3 विषम पारिवारिक स्थितियाँ

1.1.1.4 विवाहपूर्व यौन संबंध

1.1.1.5 विवाहैत्तर यौन संबंध

शिल्पा

पारूल

यास्मीन

ब्लॉसम

भोला

नील

श्रीमती दस्तूर

1.1.1.6 सामाजिक दबाव

2. अपराध के विभिन्न रूप

2.1 माफिया

2.3 वेश्यावृत्ति

2.4 पुरुष वेश्यावृत्ति

2.5 विषम धनोपार्जन के साधन

तृतीय अध्याय **77 - 136**

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में अर्थ केन्द्रित समाज व परिणाम

1. अर्थ केन्द्रित समाज

2. परिणाम

2.1 व्यक्तित्व व समाज का पतन

3. विषम व्यक्तित्व

4. विषम स्त्री-पुरुष संबंध

4.1 विवाहेतर संबंध

4.2 पारिवारिक विघटन

4.3 हत्या

4.4 आत्महत्या

5. सामाजिक पतन

5.1 विषम सामाजिक रूप

6. मूल्यों में गिरावट

7. भाषाई एवं रहन-सहन की क्षति

8. व्यवहारिक पतन

उपसंहार **137 - 142**

संदर्भ ग्रंथ सूची **143 - 147**

प्रस्तावना

प्रस्तावना

आधुनिक युग कथा-साहित्य का युग है। मानव-जीवन के विभिन्न व्यापार, हास-परिहास, सुख-दु:ख, संभोग-वियोग, आशा-निराशा, पीड़ा-आह्लाद, यहाँ तक कि मनुष्य के जन्म से मृत्यु पर्यन्त के धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक चित्र उपन्यासों में गुम्फित होते हैं। इसलिए आधुनिक युग में उपन्यास को मानव-जीवन का महाकाव्य स्वीकार किया जाता है।

उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी है, वह जीवन की गतिविधियों और परिस्थितियों से प्रभावित होता रहा है इसलिए वह अपनी रचनाओं में उस प्रभाव को प्रदर्शित करता है जिसमें समाज में निहित सारे अन्याय, अत्याचार, विषमता, विसंगतता तथा विद्रूपता आदि का विस्तृत विवेचन किया जाता है। अत: उपन्यास मानव जीवन के चरित्रांकन का अन्यतम माध्यम रहा है।

आज का युग विषम परिस्थितियों का युग है जैसे-जैसे परिस्थितियाँ बदलती रही है, वैसे-वैसे ही अनेक नई-नई समस्याएँ मनुष्य के सामने आ रही हैं।

मानव जीवन की गति और दिशा दोनों ही साहित्य में चित्रित होते हैं। अत: भारतीय समाज की मूल-प्रक्रिया को समझने के लिए सामयिक साहित्य ही सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में से उपन्यास अपनी विधागत विशेषता के कारण जीवन का अपेक्षाकृत अधिक व्यापक, सच्चा, निकटस्थ और जीवन्त चित्र प्रस्तुत करता है। इस तरह वह किसी भी युग के जीवन की गतिविधि का सच्चा इतिहास भी बनता है।

साहित्य में विभिन्न विधाएँ कविता, कहानी, निबंध एवं आलोचना में युगीन परिस्थितियों का चित्रांकन तो होता है किन्तु उतना नहीं जितना उपन्यास में। डॉ.

कृष्णलाल की दृष्टि में इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि आधुनिक युग की विविध समस्याओं का सम्यक विश्लेषण विवेचन और समाधान आदि कहीं संभव है तो वह केवल उपन्यास में ही और इस दृष्टि से उपन्यास ही आधुनिक युग का प्रतिनिधि-साहित्य का रूप है।

हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण लेखक सुरेन्द्र वर्मा कृत 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' एक छोटा उपन्यास है। जिसमें एक व्यापक दृष्टि से मुक्त मानवीय धरातल पर स्त्री-पुरुष के संबंध को दिखाने का सफल प्रयास किया है और बंबई की अपराध और गलाजत भरी जिंदगी, अकूल वैभव के नीचे पलते हुए विलास और व्यभिचार, नारी की अतृप्ति और घुटन, महानगरीय जीवन के अंतर्विरोध, महानगरीमें पलने वाले आपार समाज बम्बई की रगों में पल रहे अत्याचार और शोषण, बम्बइया चालों की कबूतरखाने की जिंदगी, सेठों के घरों से लेकर वेश्याओं के कोठो तक और आलीशन होटलों से लेकर चमकते चौराहों तक चलने वाले देह-व्यापार आदि को आज के समय के यथार्थ का चित्रण करता है।

सुरेन्द्र वर्मा एक प्रतिभा संपन्न सशक्त नाटककार और उपन्यासकार हैं। उनका लेखन प्रखर चिन्तन, संवेदनात्मक गहरायी विषय के प्रति सजगता, व्यंग्यात्मक, तेज-तर्रार भाषा एवं अद्‌भुत कल्पना शक्ति को लिए हुए है। उनके कई नाटकों का सफल मंचन उच्चकोटि के कलाकारों द्वारा किया गया है। उसका प्रमाण है उनका नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' जिसका सफल मंचन भी हुआ है। फ़िल्मों में संजीदा विद्यार्थी होने के नाते उनका फ़िल्मी अनुभव उनके लेखन में भी मिलता है। स्पष्टता उनके व्यक्तित्व का मुख्य पक्ष है।

जब मुझे एम.फिल में प्रवेश मिला तो अनुसंधान के विषय चयन के लिए मैंने अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया। मेरी वास्तविक रुचि उपन्यास में ही थी। इसलिए मैं अपना शोध विषय उपन्यास को ही लेना चाहता था। मैंने सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' के बारे में काफी चर्चाएँ सुनी थीं। लेकिन उसे पढ़ने का अवसर नहीं मिला था। जिस उपन्यास के लिए सुरेन्द्र वर्मा को याद रखा जाता है वह

है 'मुझे चाँद चाहिए'। ये उपन्यास बहुचर्चित है और इस उपन्यास पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है।

इसके उपरांत सुरेन्द्र वर्मा का तीसरा उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' का प्रकाशन सन् 1998 में हुआ। इस उपन्यास में उनकी रचनात्मकता व कलात्मकता देखने को मिलती है। इस उपन्यास में एक ऐसी समस्या का वर्णन किया गया है जो पाश्चात्य संस्कृति की देन है। यह है जिगोलो (Gigolo) संस्कृति। इसमें पुरुष खुद को बेच कर वयस्क स्त्रियों की कामेच्छा की तृप्ति करता है उसे अंग्रेजी में जिगोला (Gigolo) या हिंदी में पुरुष-वेश्या या पुरुष यौन कर्मी भी कह सकते हैं। इसके बारे में थोड़ा सा संक्षिप्त परिचय द्वितीय अध्याय में दिया गया है। इसके साथ ही इसे उपन्यास में माफिया और अंडरवर्ल्ड का भी वर्णन किया गया है। इसमें भोला और नील दोनों विषम कार्य के शिकार होते हैं। जब माफ़िया सुपारी लेकर नील को मार डालता है तब भोला हतप्रभ और सुन्न हो जाता है। दो जिन्दादिल मुम्बई गए थे - मुर्दा बन कर रह गए।

जब मैंने अपनी निर्देशिका प्रो. नूरजहाँ बेगम जी के सम्मुख अपनी इच्छा प्रकट किया तो उन्होंने मुझे सहमति प्रदान की एवं शोध का शीर्षक " 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में सामाजिक विषमता" रखने का सुझाव दिया। मुझे भी लगा कि दो 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' के इस पक्ष को उजागर करना आवश्यक है, जो अधिकतर शोधार्थियों द्वारा अनदेखा किया गया है। इस प्रकार एम.फिल. हेतु अनुसंधान विषय का चयन मैंने कर लिया।

इस लघु शोध को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तावना और उपसंहार के अतिरिक्त तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय का शीर्षक है – 'सामाजिक विषमता से तात्पर्य एवं स्वरूप'। इसके अन्तर्गत भारतीय समाज का परम्परागत रूप (यथा-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का विवेचन है। भारतीय समाज के आधुनिक रूप के अंतर्गत अर्थ तथा काम प्रधान समाज, धनोपार्जन के विषम रूप, विषम यौन संबंध, अपराधीकरण और माफिया

आदि बिन्दुओं का विश्लेषण तथा इन सब के प्रभावों से संबंधों में आ रहे विघटन, समाज में अन्याय, अत्याचार, हत्या, अपहरण, सुपारी, विषमता, विसंगति तथा विद्रूपता आदि का विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक है – " 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में धनोपार्जन के विषम रूप तथा परिणाम"। इसके अंतर्गत अपराधीकरण एवं कारण, शैक्षिक संस्थाओं के विषम रूप, विषम पारिवारिक स्थितियाँ, सामाजिक दबाव आदि समस्याओं पर प्रकाश डालने के साथ-साथ अपराध के विभिनन रूप माफ़िया, यौन तृप्ति पुरुष वैश्या (Gigolo) और विषम धनोपार्जन के साधन आदि संदर्भों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है – " 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में अर्थ केन्द्रित समाज व परिणाम" है। इसके अंतर्गत व्यक्तित्व व समाज का पतन, विषम व्यक्तित्व, पुरुष वेश्या (Gigolo) विषम स्त्री-पुरुष संबंध, विवाहेतर संबंध, पारिवारिक विघटन, हत्या और आत्महत्या आदि समस्याओं पर चर्चा करते हुए सामाजिक पतन, विषम सामाजिक रूप, मूल्यों में गिरावट, भाषाई एवं रहन-सहन की क्षति और व्यावहारिक पतन आदि संदर्भों का विवेचन किया गया है। उपसंहार में विषय की उपलब्धि एवं सीमा को रेखांकित किया गया है। अंत में आधार एवं संदर्भ ग्रंथ सूची संलग्न है।

सर्वप्रथम मैं पूज्य माताजी, पूज्य पिताजी एवं गुरुजी के चरणों की वंदना करता हूँ, जिनके आशीर्वाद से यह लघु शोध कार्य निर्विघ्न पूरा हुआ है।

लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुतकर्ता का यह विनम्र प्रयास प्रो. नूरजहाँ बेगम, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय के विदत्तापूर्ण एवं कुशल निर्देशन में संपन्न हुआ है। यह मेरा परमसौभाग्य है कि मुझे प्रो. नूरजहाँ बेगम जी के सुयोग्य निर्देशन में लघु शोध-प्रबंध पूर्ण करने का सुअवसर मिला। मुझे गुरुवर जी की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन नहीं मिला होता तो मेरे लिए यह शोध-कार्य करना कठिन होता। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर शोध के शीर्षक से लेकर शोध कार्य संपूर्ण करने में मेरा पथ

प्रदर्शन किया। उनसे मुझे जो स्नेह एवं आत्मीयता मिली उसके लिए मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानता हूँ। अतः उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

इस लघु शोध-प्रबंध को पूरा करने में मेरे परिवार वालों का अपार स्नेह व शुभ कामनाओं का बहुत बड़ा हाथ है। ममतामयी माँ एवं पिताजी के साथ-साथ भैया और भाभी का मात्र आभार प्रकट करके अपनी श्रद्धा को कम करना नहीं चाहता। वे मेरे जीवन के संबल एवं आधार हैं। अतः मेरी यही कामना है कि ईश्वर सैदव मुझे उनकी छत्र छाया एवं ममता प्रदान करे।

नृसिंह बेहेरा

हैदराबाद विश्वविद्यालय

प्रथम अध्याय

सामाजिक विषमता से तात्पर्य एवं स्वरूप

प्रथम अध्याय

सामाजिक विषमता से तात्पर्य एवं स्वरूप

1. सामाजिक विषमता की अवधारणा
    - 1.1 सामाजिक विषमता के कारण
        - 1.1.1 पारिवारिक तनाव
        - 1.1.2 आर्थिक परिस्थिति
        - 1.1.3 परिवेश
        - 1.1.4 मित्रों का प्रभाव
2. भारतीय समाज का परंपरागत रूप
    - 2.1 धर्म शब्द का मूल अर्थ
    - 2.2 धर्म शब्द का विकास
    - 2.3 आधुनिक परिपेक्ष्य में धर्म
    - 2.4 अर्थ
    - 2.5 काम
        - 2.5.1 काम का स्वरूप
        - 2.5.2 काम आधुनिक संदर्भ में
    - 2.6 मोक्ष
3. भारतीय समाज का आधुनिक रूप
    - 3.1 अर्थ तथा काम प्रधान समाज
    - 3.2 धनोपार्जन के विषम रूप
    - 3.3 विषम यौन संबंध
    - 3.4 अपराधीकरण
    - 3.5 माफ़िया

प्रथम अध्याय

सामाजिक विषमता से तात्पर्य एवं स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए समाज के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। समाज मनुष्य द्वारा बनाया गया है लेकिन समाज में ऐसे कुछ नियम हैं जो परम्परा से चले आ रहे हैं। समाज की सीमाओं में रहते हुए नियम को मनुष्य अपने दैनंदिन जीवन में व्यवहार करता है।

1. सामाजिक विषमता की अवधारणा

सामाजिक विषमता का कारण स्वयं समाज ही है। सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति की अनेक आवश्यकताएँ हैं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को अपना सम्बन्ध समाज के साथ जोड़ना पड़ता है और वह यह आशा भी करता है कि उन आवश्यकताओं की पूर्ति में समाज या समाज के अन्य सदस्यों का सहयोग उसे मिलता रहेगा, जबकि उसकी आशा पूरी नहीं होती। व्यक्ति में निराशा, असंतोष, बदला लेने की भावना आदि पनप जाती है और वह समाज द्वारा मान्य स्थापित नियमों, आदर्शों तथा मूल्यों को स्वीकार करने से इन्कार कर देता है। वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि उसका व्यवहार समाज में विषमता का ही परिचायक होता है।

इस पथ भ्रष्ट या समाज विरोधी व्यवहारों पर रोक लगाने के लिए ही समाज सामाजिक नियंत्रण के कुछ साधनों को अपनाता है। प्रत्येक स्वाभाविक समाज में विषमता की स्थिति सामाजिक व्यवस्था के एक अंग के रूप में ही विद्यमान होती है और इसलिए सामाजिक नियंत्रण के साधनों को अपनाने की आवश्यकता होती है।

यह आशा नहीं की जा सकती कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सभी भूमिकाएँ समाज द्वारा मान्य नियमों या आदर्शों के अनुरूप ही होंगी। उसी प्रकार आशा करना व्यर्थ है कि समाज के सभी कर्त्ताओं के लक्ष्यों और क्रियाओं में पूर्ण

समन्वय होगा और उनमें कभी किसी प्रकार का संघर्ष नहीं होगा। ऐसा न कभी हुआ है और न होगा। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे के ऊपर अत्यधिक निर्भरशीलता का एक बुरा परिणाम यह होता है कि जब कभी भी ये दूसरे लोग व्यक्ति की आशाओं के अनुरूप उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग नहीं देते तो व्यक्ति स्वयं अपने ढंग से अपने स्वार्थों की पूर्ति में लग जाता है और सामाजिक एकता एवं संगठन की चिन्ता करना छोड़ देता है। उस स्थिति में समाज में विषमता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

मनुष्य की असंख्य मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताएँ होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति इन आवश्यकताओं की अधिकतम पूर्ति चाहता है। समाज व्यवस्था व संगठन को बनाए रखने के लिए उन्हें मनमाने ढंग से कार्य करने की अनुमति समाज नहीं देता अपितु उन पर सामूहिक नियमों या आज्ञाओं के द्वारा नियंत्रण की व्यवस्था करता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन सामूहिक नियमों का नियंत्रणात्मक प्रभाव घट जाता है और इस अवसर से फायदा उठाकर समाज के सदस्य मनमाने तौर पर अपने-अपने स्वार्थों की अधिकतम पूर्ति में लग जाते हैं। फलतः समाज में विवेक व आदर्श एक ओर रखा रह जाता है और व्यक्ति विवेकहीन एवं अस्वाभाविक व्यवहार करने लगता है। इस प्रकार का अस्वाभाविक व्यवहार समाज में एकाएक कोई क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाने के फलस्वरूप ही हो सकता है क्योंकि इस प्रकार के एकाएक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों के साथ समाज के लोग अपना अनुकूलन करने में असफल रहते हैं और उनके व्यवहार में आदर्श-शून्यता और अस्वाभाविकता पनप जाती है। यह स्थिति सामाजिक विषमता कहलाती है।

1.1 सामाजिक विषमता के कारण

इस विषमता की स्थिति के उत्पन्न होने के कारणों की चर्चा करते हुए श्री दुर्खीम ने लिखा है कि "सामूहिक शक्ति अथवा सामाजिक नियंत्रण के भंग हो जाने के कारण अचानक महत्वपूर्ण तकनीकी परिवर्तन होने से अथवा एकाएक कोई बड़ी

उन्नति अथवा अवनति आदि होने से समाज में जो नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, उसी से समाज में नियमविहीनता और आदर्श-शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है क्योंकि इन एकाएक उत्पन्न परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करना प्राय: संभव नहीं होता है।"[1] उदाहरणार्थ अचानक उत्पन्न आर्थिक संकट आ जाने पर अनेक उच्च आर्थिक स्थिति वाले लोगों की स्थिति एकाएक गिर सकती है। उस अवस्था में या तो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को कम करे अथवा आत्मनियंत्रण के द्वारा अपने को उनसे दूर रखे। लेकिन उक्सर होता यह है कि वे ऐसा करने में असफल होते हैं और समस्त सामाजिक आदर्शों को भूलाकर आदर्शविहीन व अस्वाभाविक व्यवहार करके अर्थात् भ्रष्ट अनैतिक या आदर्शविहीन उपायों द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति को पुन: ऊँचा उठाने का प्रयत्न करके समाज में विषमता की स्थिति को उत्पन्न करते हैं। यदि संकट शक्ति अथवा सपत्ति का हो तब भी विषमता की स्थिति सामने आती है। अर्थात् कोई भी अचानक सामाजिक परिवर्तन विषमता का एक उल्लेखनीय कारण बन सकता है। श्री दुर्खीम के शब्दों में – "जब भी कोई अचानक परिवर्तन होता है तो समाज के नियंत्रणात्मक नियमों की आदर्शात्मक संरचना ढीली पड़ जाती है, और उस अवस्था में व्यक्ति को यह नहीं सूझता कि क्या गलत है अथवा क्या सही; उसकी इच्छाएँ अदम्य रूप में बढ़ जाती हैं और उनकी संतुष्टि के लिए वह विषमता को अपनाता है।"[2]

When there is a sudden change, the normative structure of the regulating norm of society slacken; hence man does not know what is wrong or what is right; his impulses are excessive; to satisfy them, he seeks anomie.

एक बार जब समाज में विषमता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो फिर वह छूत की बीमारी की तरह फैलती जाती है और संपूर्ण समाज में मूल्यविहीनता व आदर्शविहीनता की स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक सामाजिक शक्तियाँ,

---

[1] सामाजिक विचारधारा – रवीन्द्र नाथ मुखर्जी, पृष्ठ.156 से उद्धृत

[2] - वही - पृष्ठ.157 से उद्धृत

अपने को पुन: प्रतिष्ठित करके समाज में संगठन व एकीकरण की स्थिति को उत्पन्न करने में सफल न हों। वास्तव में विषमता की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपने मनमाने ढंग से अपनी आशाओं, अभिलाषाओं व आवश्यकताओं की अधिकतम पूर्ति करने में जुट जाता है और ऐसा करते हुए न तो उसे समाज की परवाह होती है, न लोक लाज या लोक निन्दा की और न ही सामाजिक आदर्शों अथवा मूल्यों की। उसके लिए तो अपना स्वार्थ सबसे बढ़कर होता है और उन स्वार्थों की सन्तुष्टि में उसका अपना व्यक्तिगत मूल्य ही उसके लिए सर्वोपरि होता है। वह किसी भी प्रकार के नियंत्रण व आदर्श को स्वीकार नहीं करता और अपनी आशाओं व आवश्यकताओं को इतना बढ़ा लेता है कि वे व्यक्तिगत दायरे से निकलकर समाज की अपनी आशाओं व आवश्यकताओं को छिन्न-भिन्न करके समाज में विषमता की स्थिति उत्पन्न कर देता है। जब व्यक्ति सामूहिक स्वार्थों, नियमों तथा शक्तियों को तुच्छ समझने लगता है तो व्यक्ति और व्यक्ति के बीच व्यक्ति और समाज के बीच तथा समूह और समूह के बीच के जो पवित्र आधार हैं, वह समाप्त हो जाते हैं, रह जाती है केवल नवीनताओं के लिए अनजाने सुखों के लिए कभी न बुझने वाली एक प्यास।

समाज को आगे बढ़ाने के लिए सामाजिक संगठन जरूरी है, जिससे समाज आगे बढ़ने के साथ परिवार को भी आगे बढ़ाता है। व्यक्ति असामाजिक बनता है तो उसके पीछे कई कारण होते हैं।

1.1.1 पारिवारिक तनाव

परिवार में माता और पिता केंद्रीय बिन्दु माने जाते हैं क्योंकि इन से अन्य संपर्क की सृष्टि होती है। जब माता-पिता के बीच संपर्क में तनाव होते हैं तो उसका प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। बच्चा परिवार छोड़ कर समाज में नियमविहीन कार्य में लिप्त रहता है। यह साधारत: ब्रिटिश और अमेरिका आदि देशों में अधिक है। भारत में भी आज उसका प्रभाव कम नहीं है। पिता-माता के स्नेह, श्रद्धा कर्त्तव्य के अभाव के कारण बच्चा समाज में असामाजिक बन जाता है।

1.1.2 आर्थिक परिस्थिति

समाज में आर्थिक परिस्थिति गुरुत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समाज में व्यक्ति अर्थ के लिए लड़ता रहता है। लेकिन अंत में वह हार जाता है तो ग़रीबी की स्थिति ही व्यक्ति को चेतन और अवचेतन रूप में असामाजिक कार्य करने को बाध्य करती है।

1.1.3 परिवेश

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए परिवेश ही महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वह इस परिवेश से व्यक्तित्व का विकास करते हुए अपनी शक्ति का विकास करता है। जिस परिवेश में व्यक्ति रहता है उसका असर व्यक्ति के ऊपर पड़ता है। जैसे नगरों में होटलों में नृत्य, नाइट क्लब, वयस्क फ़िल्में आदि नगरीय परिवेश में सामाजिक विषमता का सृजन करती हैं।

1.1.4 मित्रों का प्रभाव

यदि समाज में कोई असामाजिक कार्य में लिप्त होता है तो उससे मित्रता करने पर उसका असर पड़ता है और वह भी असामाजिक कार्य में लिप्त हो जाता है।

साधरणत: हम देखते हैं कि प्राचीन काल में कम उम्र में शादी हो जाती थी। लेकिन आधुनिक काल में यह एक निर्दिष्ट उम्र बन गयी है। युवक और युवती दोनों की इच्छा होने के बावजूद समाज उन्हें मिलने नहीं देता है। इससे निवृत्त युवक बलात्कार, अपराध और यौन संबंधी भिन्न-भिन्न अपराध करता है। आधुनिक समाज में युवक और युवती को अपनी मर्जी से मिलने से समाज में विषमता को नियंत्रित किया जा सकता है। समाज में जो वेश्याएँ हैं वे अपने पेट की भूख को मिटाने के लिए धंधा करती हैं। इससे समाज के कुछ अंग की भलाई होती है, किन्तु बुराई अधिक। आधुनिक समाज में मनुष्य की शारीरिक और मानसिक भूख दोनों को मिटाने की प्रबल आवश्यकता है। भारतीय समाज के परंपरागत रूप और आधुनिक रूप में अत्यधिक अन्तर देखा जा सकता है। अत: इस पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

2. भारतीय समाज का परंपरागत रूप

प्राचीन काल से भारतीय समाज का परम्परागत रूप आधुनिक समाज में भी प्रचलित है। लेकिन आधुनिक युग में शिक्षा और विज्ञान के विकास के कारण समाज में कुछ परिवर्तन आया है। भारतीय परम्परागत रूप आज वैसे ही है जैसे प्राचीन काल में था। आज के समाज में ऐसे लोग भी मिलेंगे जो पुरानी परम्परा को अभी भी मान रहे हैं। यह परम्परा प्राचीन काल से आज तक उसी रूप में समाज में विद्यमान है। आधुनिक समाज में परम्परागत रूप परिवर्तित होकर समाज में नये ढंग से प्रवेश कर रहा है। परम्परा से चले आ रहे पुरूषार्थ को आज भी समाज में महत्वपूर्ण माना जाता है। लेकिन चार पुरूषार्थों में से आधुनिक युग अर्थ और काम प्रबल हो गया है। मोक्ष और धर्म गौण बन गया है।

महाभारत कालीन समाज को 'वर्णाश्रम समाज' का नाम दिया जाता था। उस समय तक 'हिन्दू' शब्द का प्रचलन नहीं हुआ था। समाज में शास्त्रीय वर्ण व जाति और ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की व्यवस्था प्रचलित थी। आज इस वर्णाश्रम व्यवस्था को समाज में कोई स्थान नहीं है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र ये चार वर्ण के नाम से अभिहित थे। इन चारों वर्णों में समान वर्ण के स्त्री-पुरुष से उत्पन्न संतान माता-पिता के वर्ण से ही जाने जाते थे। विभिन्न वर्णों के स्त्री-पुरुष के संसर्ग से जो संतान होती थी उसका सिर्फ जाति द्वारा समाज में परिचय होता था। उसका वर्ण कोई नहीं होता था। अम्बष्ठ आदि जाति होती थी किन्तु वर्ण नहीं। परवर्ती काल में भाषा में वर्ण व जाति का इस तरह विचारपूर्वक प्रयोग कोई बहुत नहीं दिखाई देता। आजकल वर्ण के अर्थ में भी जाति शब्द का व्यवहार होता है। वर्ण व जाति के संबंध में चर्चा की जाये तो महाभारत से अनेक तथ्य मिल सकते हैं।

मनुष्य में जन्म के द्वारा ही वर्ण निश्चित किया जाता था। महाभारत में यही उल्लिखित है। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय, इस तरह वर्ण स्थिर करने को ही जन्मगत कहा जाता है और क्षत्रिय पुत्र अपने कार्यों द्वारा ब्राह्मण का

लाभ करे अथवा ब्राह्मण पुत्र शुद्रत्व को प्राप्त हो तो जन्मगत वर्ण में परिवर्तन होने पर कर्मगत वर्णस्थिर करना पड़ता था।

साधारणत: ऐसा माना जाता है कि चतु: पुरुषार्थों के सम्यक सेवन की सृष्टि से आश्रमों की कल्पना की गयी। फलत: यह जिज्ञासा होती है कि धर्म आदि पुरुषार्थों का आश्रमों में किस प्रकार विनियोग होता है। इस परम्परागत रूप का विस्तार से विश्लेषण समीचीन होगा।

2.1 धर्म शब्द का मूल अर्थ

व्याकरण में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृञ' धातु से 'मक' प्रत्यय जोड़ने पर हुआ है। धर्म को परिभाषित करने के लिए यह श्लोक यहाँ प्रासंगिक है –

"धारयतीति धम: य: लोकान धारयति,
येन मानव समाजो धृत:
सधर्म पतितं पतन्नं पतिष्यन्नं धरनीति धर्म:।"[1]

अर्थात् सारा प्रपंच जिसके द्वारा धारित होता है, जो प्रपंच का आश्रय स्वरूप है जो अपने में गिरे हुए, गिरते हुए और गिरने वाले मनुष्यों को अवनति के मार्ग से बचाकर उन्नति की ओर ले जाने की शक्ति धारण करता है, वही धर्म कहलाता है।

आज के जगत् में धर्म एक ऐसा रूढ़ शब्द बन गया है जो केवल मानव की संकीर्णता और समाज के हृास का कारण मात्र बना हुआ है। धर्म का अर्थ और उद्देश्य तो मानव मात्र के प्रति प्रेम और भातृत्व को पैदा करना है। विद्वानों ने धर्म को मानव जीवन का सारांश माना है धर्म ही मानव समाज को एक सूत्र में बाँधने वाली परम वस्तु है। प्राचीनकाल में धर्म का अर्थ था - चोरी न करना, पराया-धन सम्पत्ति पर दृष्टिपात न करना, पर स्त्री गमन न करना, लूट, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, डकैती एवं धोखाधड़ी आदि न करना।

वैशेषिक दर्शन में कणाद ऋषि ने कहा है कि – "यतोऽभ्युदय नि:श्रेयस सिद्धि: सधर्म:।"[1] अर्थात् धर्म वह है जिससे अभ्युदय से निश्रेयस की सिद्धि होती है।

[1] सांप्रदायिकता एक चुनौती और चेतना – डॉ. यशवन्त बिष्ट, पृ.5 से उद्धृत

यानी जिस आचरण के द्वारा मनुष्य की इस लोक में पूर्ण उन्नति हो और मृत्यु के अनंतर भी उसे सद्गति प्राप्त हो उसी आचरणीय विधान को धर्म कहते हैं।

वैसे धर्म शब्द के कई अर्थ विविध कोशों में बताये गये हैं किन्तु यह सत्य है कि धर्म एक ऐसा गुण विशेष है जो प्रत्येक वस्तु में मौजूद है तथा जिसके अभाव में किसी का अस्तित्व नहीं रह जाता है। "धर्म शब्द की व्यापकता उसके बहुअर्थक होने से नहीं है, प्रत्युत धर्म एक वह गुण है जिसके बिना कोई वस्तु, प्राणी, पदार्थ निःसार हो जाता है और वह स्वयं धर्म के बिना अस्तित्वहीन हो जाता है।"[2]

भारतीय वाङ्मय में धर्म शब्द केवल क्रिया काण्ड तक ही सीमित नहीं है, वह सम्पूर्ण वास्तविक स्वरूप में वर्तमान रहता है। स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को तीन भागों में बाँटा है। उन्होंने कहा – "प्रत्येक धर्म के तीन भाग होते हैं। पहला दार्शनिक भाग – इसमें धर्म का सारा विषय अर्थात् मूलतत्व, उद्देश्य तथा लाभ के उपाय निहित हैं। दूसरा पौराणिक भाग – वह स्थूल उदाहरणों द्वारा दार्शनिक भाग को स्पष्ट करता है। इसमें मनुष्यों एवं अति प्राकृतिक पुरुषों के जीवन के आख्यान आदि लिखें हैं। इसमें सूक्ष्म दार्शनिक तत्व मनुष्यों अति प्राकृतिक पुरुषों के जीवन के उदाहरणों द्वारा समझाये गये हैं। तीसरा आनुष्ठानिक भाग यह धर्म का स्थूल भाग है। इसमें पूजा पद्धति, आचार, अनुष्ठान, शारीरिक विविध अंग विन्यास, पुष्प, धूप, धूनी प्रभृति नाना प्रकार की इन्द्रिय ग्राह्य वस्तुएँ हैं। इन सबको मिलाकर अनुष्ठानिक धर्म का संगठन होता है। सारे विख्यात धर्मों के ये तीन विभाग हैं।"[3]

महाभारत, मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में, व पुराणों में धर्म के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया गय है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं।

"धृति क्षमा दमांऽस्तेयं शौचमिन्द्रय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोध दशकं धर्म लक्षणम् ।।"[4]

---

[1] भारतीय संस्कृति – नरेन्द्र मोहन, पृ.133 से उद्धृत
[2] सम्प्रदायिकता एक चुनौती और चेतना – डॉ. यशवन्त विष्ट, पृ.6 से उद्धृत
[3] धर्माक धर्म पर स्वामी विवेकानंद के कुछ विचार – मन्नु लाल मालवीय, पृ.698
[4] मनु स्मृति – (6-921) श्लोक, पृ.531

संतोष, क्षमा, दया, अपरिग्रह, पवित्रता, इन्द्रिय संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोधये धर्म के दश लक्षण कहे गये हैं।

इस प्रकार वामन पुराण में विभिन्न वर्गों, समुदायों व जातियों के लिए विभिन्न धर्म बताये गये हैं। इसके साथ-साथ सभी मानवों के लिए धर्म के स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, उदारता, विश्रान्ति, दया, अहिंसा, क्षमा, दाम, जिनेन्द्रियता, शौच, मांगल्य तथा ईश्वर के प्रति भक्ति आदि लक्षण बताये गये हैं। इस प्रकार कई पुराणों व ग्रंथों में धर्म के कई लक्षण बताये गये हैं जिनसे धर्म का स्वरूप स्पष्ट होता है। यहाँ धर्म प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय, जाति या मन विशेष के लिए नहीं कहा गया है। बल्कि समस्त मानव कोटि के लिए कहा गया है। तैत्तरीय श्रृति में कहा गया है कि – "धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि समस्त विश्व धर्म में ही स्थित है, संसार में धर्म का पालन करने से ही प्रजा विकासशील होती है। धर्म से पाप नष्ट होता है। धर्म ही सबका आधार है।"[1]

2.2 धर्म शब्द का विकास

धर्म शब्द के विकास के बारे में कुछ शब्दों में कहना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। यूँ तो माना जाता है कि इसका व्यवहारिक प्रयोग अनादि काल से होता आ रहा है। किन्तु लिखित ग्रंथों में इसका सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में किया गया है। व्युत्पत्ति के आधार पर अपने उद्‌भव काल में धर्म शब्द धारण व पोषण करने वाला परमात्मा या उसकी अलौकिक कल्याणकारी शक्ति का पर्याय था। युग परिवर्तन के साथ-साथ इसका अर्थ भी बदलता गया। धर्म को सर्वशक्तिमान कहा गया। उपनिषदकाल में उसे ईश्वर की अनुभूति और स्वरूप कहकर आध्यात्मिक रूप दिया गया। कई ग्रंथों में, धर्म शास्त्रों में नीतिपूर्ण बातों को स्पष्ट किया गया। ये नीतिपूर्ण बातें ही आगे चलकर धर्म के पर्याय बन गये। यदि यह मानकर चलें कि नैतिकता धर्म से अभिन्न है तो दोनों एक ही हैं तो यह दोषपूर्ण न होगा क्योंकि जहाँ धर्म है वहाँ नैतिकता है। इन्हीं नैतिक मूल्यों के चलते धर्म अपने स्वरूप को बनाता है। अतः हमें निरन्तर शुद्ध और पवित्र रखता है।

[1] शांतिपर्व – 109, पृ.4705

भगवान बुद्ध के '*संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि*'में भी यह बात है कि उन्होंने धर्म का शरण लिया जहाँ वे इसके परमार्थ को ग्रहण करते हैं। उन्होंने अहिंसा, अपरिग्रह, करुणा और मैत्री को धर्म का मूल माना और दूसरों को उस पर चलने की प्रेरणा दी। रामायण और महाभारत के काल में धर्म का विशद विवेचन मिलता है। मर्यादा और चरित्र को धर्म का पर्याय बनाया गया। जब समाज में मर्यादा नहीं रह जाती, मानव जीवन में कर्त्तव्य पालन के साथ-साथ मर्यादा का पालन न होगा तो उस धर्म संस्थापन के लिए महापुरुष जन्म लेते हैं। इसी बात को गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं –

"यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमर्धस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।"[1]

धर्म शब्द का इतना विपुल अर्थ है कि कभी उसे मर्यादा से जोड़ा गया तो कभी अस्तित्व संबंधी गुण से। सभी का सार कर्त्तव्य पालन ही हो सकता है जो मर्यादा से मण्डित है। मर्यादा के बिना कर्त्तव्य पालन द्वारा पाप भी भी हो सकता है जो मानवता के लिए हानिकारक माना जायेगा। वाल्मीकि के राम भी इसी धर्म के मूर्त रूप हैं। उन्होंने रामायण में *"एष विग्रहवान राम: रामों विगवान धर्म:"* आदि वचन बार-बार लिखे हैं। महाकाव्यों के बाद, पुराणों में भी धर्म का विपुल विश्लेषण हुआ है। पुराणों में अनेक कथाओं द्वारा, अनेक व्याख्यानों के सहारे धर्म के सार तत्व को अभिव्यक्त किया गया। यह कह सकते हैं कि समस्त पौराणिक साहित्य धर्म की गरिमा गान से भरे पड़े हैं।

इस तरह से धर्म को अनेकानेक रूपों में प्रतिपादित किया गया। मध्यकाल में कई मतमतान्तरों का उदय हुआ। उन सब में भी धर्म की महत्ता का गुणगान हुआ है। मध्यकालीन सन्तों व भक्तों ने अहिंसा, सत्य, क्षमा, दया, धैर्य, शैच अपरिग्रह आदि को धर्म के रूप में अपनी कृतियों द्वारा अभिव्यक्त किया। अत: धर्म शब्द के मूल अर्थ की निन्दा नहीं की गई विद्वान, संतों आदि ने इसी धर्म के अर्थ का प्रतिपादन किया।

---

[1] श्रीमद्‌भगवत गीता – व्यासदेव, पृ.105

2.3 आधुनिक परिपेक्ष्य में धर्म

धर्म शब्द का इतना विपुल अर्थ होने के बावजूद आधुनिक युग में इसका अर्थ स्वरूप सार परिवर्तित ही नज़र आता है। आज धर्म एक उपेक्षित शब्द है। यह दुर्दशा इसलिए क्योंकि ज़ाहिर है आजकल इसके नाम पर यहाँ वहाँ आडम्बर ही दिखते हैं। धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष, वैमनस्य ही फैलाये जाते हैं। ऐसे में धर्म के उत्तरार्द्ध को जानना बहुत कठिन हो गया है। विश्व भर में विद्वान लोगों के होते हुए भी धर्म के अर्थ को कोई जान नहीं पा रहा है। प्रत्युत धर्म को एक मत या संप्रदाय के अर्थ में लिया जा रहा है।

धर्म किसी भी जाति, वर्ग और क्षेत्र के लोगों की धरोहर नहीं है। आधुनिक युग में भी धर्म के सही अर्थ की स्थापना के कई प्रयास हुए हैं। डॉ. शंकर दयाल शर्मा इस संदर्भ में कहते हैं – "धर्म का अर्थ तोड़ना नहीं बल्कि लोगों को जोड़ना है। धर्म एक संयोजक तत्व है। मैं धर्म को व्यक्ति की एक ऐसी अंत: प्रेरणा मानता हूँ जो उसकी चेतना में रूपान्तरण करके उसके अन्दर विद्यमान उच्चतम मानवीय गुणों का विकास करता है। यह एक ऐसा आन्तरिक बल है, जो मनुष्य की पाशविक चेतना को दबाता है और उसे उच्चतर श्रेणी की ओर अग्रसर करता है। मैं प्रेम, करुणा, सेवा, त्याग आदि इन्हीं चारित्रिक गुणों को धर्म मानता हूँ।"[1] वास्तव में ये गुण ही धर्म के प्रतिष्ठापन के मूल तत्व होते हैं। धर्म को एक आंतरिक बल के रूप में, अंत: प्रेरणा के रूप में मानने की यह विचारधारा आज की पीढ़ी के लिए अत्यंत आवश्यक है।

विद्वज्जनों ने धर्म के मज़हब रूपी अर्थ को लेकर भी कई बातें कही हैं। रिलीजन के अर्थ में धर्म की व्याख्या कई बार आधुनिक युग में की गई। प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे धर्म का एक अलग परिदृश्य दिखलाते हैं। उनके अनुसार धर्म मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच संबंधों की अवधारणाओं को निश्चित तथा औपचारिक रूप प्रदान करने वाला तत्व है। "धर्म समाज की व्यवस्था की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है – वह समाज का रूपक है।"[2]

---

[1] चेतना के स्रोत – डॉ. शंकरदयाल शर्मा, पृ.113

[2] परम्परा और परिवर्तन – प्रो. श्यामाचरण दुबे, पृ.97

धर्म का सार यदि कर्त्तव्य, बोध, मर्यादा, पूर्ण कर्त्तव्य पालन हो या व्यक्त तथा समाज के विकास हेतु व्यवस्थित अनादि काल की सर्वोच्च गुणात्मकता हो, किसी भी कारण यह किसी समूह या प्रत्येक समुदाय का धरोहर हो जाय तो उसके परिणाम विपरीत ही होंगे और यही संभव हुआ है, आधुनिक युग में। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बढ़ते चरण से धर्म का क्षेत्र सिकुड़ता गया। पश्चिमी संस्कृति तथा पश्चिमी और कुछ पूर्वी देश इस बात के प्रमाण हैं। इसके विपरीत जो प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अल्पविकसित होते हैं, वहाँ धर्म (यहाँ मज़हब के अर्थ में) के प्रभाव की व्यापकता और उसकी पकड़ अधिक होती है। "यद्यपि उनके पास अनुभव सिद्ध ज्ञान का जो ढाँचा होता है, वह जीवन के अनेक क्षेत्रों के लिए अपर्याप्त होता है। जब अनुभव और प्रयोग सिद्ध ज्ञान मार्ग नहीं दिखा पाते, तब धर्म सहायता करता है, वैज्ञानिक सोच वाले समाजों में इन व्याख्याओं की मात्रा कम हो जाती है और उन पर विश्वास घट जाता है।"[1] यह सोचने की बात है कि हम धर्म को किस अर्थ में ले रहे हैं और किस अर्थ में लेना चाहिए। किसी मत या वाद के लिए यह शब्द रुढ़ होता जा रहा है और इसी संकीर्ण अर्थ में हम इसे लें तो ठीक नहीं होगा। इससे बचने का एक मात्र उपाय तो यही होगा कि धर्म के विस्तृत अर्थ को हम यथार्थ के धरातल पर पुनः स्थापित करें।

धर्म के उद्‌भव को लेकर कई मत प्रचलित हो चुके हैं। धर्म को मिथकों के साथ हमेशा जोड़ा गया। भगवान बुद्ध के काल में भी जातक कथाओं के माध्यम से बौद्ध धर्म के संतों और दुष्टात्माओं से संबंधित एक मिथकीय परम्परा को जन्म दिया था। मिथकों के अलावा धर्म को जादू-टोने से, आश्चर्य व कौतूहल से, प्रतिभा से उत्पन्न माना गया। मनोवैज्ञानिकों की अपनी एक व्याख्या है कि बाल्यकाल से ही माता-पिता पर अवलम्बित रहने के कारण मानव में ईश्वर प्रेम के रूप में धर्म प्रवृत्ति पनपती है। विविध मतों ने बहुदेवतावाद पर प्रकाश डाला है। लेकिन भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार धर्म का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। धर्म का अर्थ केवल दैविक भावना ही नहीं है प्रत्युत रोज़मर्रा के जीवन में जो आचरण हम करते हैं उसके

---

[1] परम्परा और परिवर्तन – प्रो.श्यामाचरण दुबे, पृ.97

परहित की भावना भी सम्मिलित रहती है या हो। गौरतलब है कि जहाँ धर्म का नाम आता है वहाँ ईश्वर या देवताओं का नाम लगभग नहीं ही आता है। ऐसा उल्लेख किसी भी धर्म ग्रंथ में हमें शायद ही मिले। धर्म के दस लक्षणों (धृति, क्षमा, दया, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध आदि) के स्पष्टीकरण से हम समझ सकते हैं कि इनमें कहीं किसी देवता का पूजा विधान या अर्चना, उपासना की पद्धति नहीं बताई गई है। धर्म का रूप सदैव एक ही रहेगा। सत्य, अक्रोध, क्षमा जैसे गुण कभी बदलते नहीं हैं। वे हमेशा एक ही रहते हैं। अतः धर्म का स्वरूप सदैव उस व्यापक सकारात्मक रूप में ही रहेगा जो केवल मानव कल्याण के हित में है।

आधुनिकीकरण के दौर में धार्मिक परम्पराओं का बोलबाला कम होने के बावजूद धर्म का गलत इस्तेमाल तो अधिक होता ही जा रहा है। जब तक धर्म समाज के विकास की ओर उन्मुख रहेगा, तब तक आधुनिकता के परिपेक्ष्य में धर्म अपने मूल अर्थ का प्रतिपादन करता रहेगा। अन्यथा मज़हब की सीमाओं में आ कर वह अपना अस्तित्व खोकर सामाजिक, राष्ट्रीय विध्वंस का कारण मात्र बन कर रह जायेगा।

धर्म जिस प्रकार व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है उसी प्रकार समाज और राष्ट्र के लिए भी। आजकल धर्म को राजनीति से भी जोड़ा दिया गया है। धर्म से विमुख व्यक्ति और समाज का विषम होना अवश्यंभावी है।

2.4 अर्थ

धर्म के उपरान्त मानव जीवन का दूसरा प्रमुख अभीष्ट अर्थ है। अधिकांश धर्मशास्त्रों में धर्म को ही प्रधानता दी गयी है तथापि कुछ में अर्थ को प्रमुखता दी है। वास्तव में कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय आदि द्वारा धर्नाजन करना ही अर्थ का तात्पर्य है। प्राचीन भारत में तो आर्थिक विकास करने वाले व्यक्ति वैश्य हुआ करते थे।

सोमदेव ने लिखा है कि – "यदि धर्म अर्थ और काम का कर्त्तव्य एक ही समय उपस्थित हो तो अर्थ- कार्य को ही प्रधानता देनी चाहिए, क्योंकि धर्म और काम

का सुचारू से संपादन दृढ़ होने पर ही संभव है।"[1] डॉ. प्रभु की मान्यतानुसार – "अर्थ का तात्पर्य उन समस्त साधनों से है जो धन तथा सत्ता जैसी संसारिक समृद्धि प्राप्त करने में आवश्यक रूप से सहायक होता है।"[2]

डॉ. लल्लन जी गोपाल के अनुसार – "अर्थ शब्द धन, सम्पत्ति या मुद्रा का पर्यायवाची नहीं है। यह भौतिक सुखों की समस्त आवश्यकताओं तथा साधनों का द्योतक है।"[3]

ऋग्वेद को आधार मानकर भी गोखले ने अर्थ को इस प्रकार परिभाषित किया – "अर्थ का तात्पर्य उन समस्त भौतिक वस्तुओं से है जो वैयक्तिक, पारिवारिक तथा धार्मिक कार्यों की पूर्ति में सहायक तथा आवश्यक होता है।"[4]

वास्तव में पुरुषार्थ चतुष्ट्य में अर्थ केवल धन का पर्याय न होकर सार्थकता की खोज का प्रासंगिक बने रहने की जिजीविषा का पर्याय है। जो कभी समाप्त नहीं होगा और मनुष्य जीवन-यात्रा के लिए मूल तत्व कह सकते हैं। मनु ने अर्थ के सात स्रोत बताए - "दाय, लाभ, क्रीत, विजय से प्राप्त, प्रयोग (कुशीद कर्म), कर्मयोग (कृषि-वाणिज्य से प्राप्त), सत्प्रतिग्रह (दान से प्राप्त)।"[5] इस प्रकार दण्डी ने "कृषि, पशुपालन, व्यापार और सन्धिविग्रह अर्थ का परिवार बताया है।"[6] लक्ष्मीधर ने नारद और विष्णु को उद्धृत करते हुए स्रोतों के आधार पर अर्थ के तीन प्रकार उल्लिखित किए हैं – श्वेत, शबल (चितकबरा) तथा कृष्णा (कालाधन)। श्वेत अर्थ में – दायभाग, मित्र से, दहेज से प्राप्त और उपहार के रूप में प्राप्त धन आता है। शबल अर्थ में - उत्कोच निषिद्ध पदार्थ यथा नमक, लाख के व्यापार से प्राप्त धन का उल्लेख है तथा कालेधन में द्यूत क्रीड़ा, चोरी, डकैती, भीख, धोखा से कोई अन्य वस्तु दबाकर उसका नकली प्रतिरूप बेचने आदि से प्राप्त धन आते हैं।

---

[1] नीतिवाक्यमृत – सोमदेव सूरी – पृ.3.15
[2] भारतीय समाज की संरचना – हेमलता श्रीवास्तव, पृ.120 से उद्धृत
[3] भारतीय समाज की संरचना – हेमलता श्रीवास्तव, पृ.120 से उद्धृत
[4] भारतीय समाज की संरचना – हेमलता श्रीवास्तव, पृ.121 से उद्धृत
[5] मनुस्मृति – 10.115, पृ.562
[6] दशकुमार चरि- दंडी, पृ.172 (अंक-2)

सोमदेव ने उपभोग के आधार पर धन के तीन प्रकार बताए हैं – "विवेकहीनता से व्यय किया जाने वाला उपर्जित धन-तादात्विक पैतृक सम्पत्ति को यदि द्यूत मदिरा और वैश्या पर व्यय किया जाय तो वह 'मूलहर' और सेवकों तथा स्वयं को कष्ट में रखकर जो धन संग्रह किया जाए वह 'कदर्य' कहलाता है।"[1]

महाभारत के अनुसार एक चौथाई धर्म पर, एक चौथाई मुखोप भोग पर, एक चौथाई धन को विवर्धित करने के लिए व्यय करना चाहिए। विभिन्न कार्यों में पूर्जी के समायोजन से ही धन विवर्धित होता है। इसलिए सोमदेव ने 'अर्थानुबन्धु' अर्थात् अप्राप्त धन की प्राप्ति, प्राप्ति की सुरक्षा और सुरक्षित की वृद्धि का उल्लेख किया है। अर्थानुबन्ध के बारे में दण्डी ने भी कहा कि – "अर्थ से ही दण्ड और राज्य संबंधी कार्य सिद्ध होते हैं।"[2] धर्म की अवहेलना कर अर्थ संचय करने वालों के यहाँ खान, पानादि तक का निषेध भारतीय संस्कृति में किया गया है। भारतीय मनीषियों ने स्पष्ट "अर्थ और धर्म दोनों का अर्जन करना चतुर व्यक्ति के लिए आवश्यक बताया गया है।"[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसार के मनुष्यों की आर्थिक आवश्यकतायें एक जैसी होने पर भी पर्याप्त असमान होती हैं। इनका सामञ्जस्य करना बड़ा कठिन है। आज के बहुविकसित वैज्ञानिक युग में भी कोई ऐसा उपाय नहीं सुझाया जा सका हैजिससे विश्व की आर्थिक समस्या को पूरी तरह हल किया जा सके। प्राचीन मनीषियों ने अर्थोपार्जन के नियम बनाकर अर्थशुद्धि द्वारा आर्थिक असमानता के कारण होने वाले पारस्परिक विवादों को दूर करने का प्रयास किया।

2.5 काम

'काम' मूलतः संस्कृत भाषा का शब्द है। वेद एवं उपनिषदों में जहाँ कहीं 'काम' की चर्चा का आभास मिलता है वह सामान्य इच्छा के ही अर्थ में है। हिन्दी कोश के अनुसार 'काम' का अर्थ 'इच्छा' 'चाह' या 'कामना' है। कामशास्त्र में

---

[1] ती.पाठ - 2.7.9

[2] दशकुमार चरित – दण्डी – पृ.172 अंक- 2 (द्वितीय अंक)

[3] हितोपदेश – श्लोक - 3

इसका तात्पर्य उस तीव्र इच्छा से है जो स्त्री-पुरुष के संभोग से प्राप्त होने वाले सुखानुभव के लिए प्रयुक्त होता है।

2.5.1 काम का स्वरूप

'काम' एक जीवन विधायनी शक्ति है जिससे समस्त संसार का प्राणी जगत अनुप्राणित है। मनुष्य की ऐषणाएँ काम के द्वारा ही संचालित होती हैं। काम ही जीवन के सौन्दर्य और माधुर्य का उत्स है। लौकिक और आध्यात्मिक साधना का यह प्रधान स्रोत है। यह एक ऐसा वर्जित विषय है जिस के संदर्भ में संपूर्ण संसार का साहित्य ओतप्रोत रहा है। और आज भी है। काम मानव जाति की ही नहीं अपितु समस्त संसार के प्राणी जगत की आदिम-प्रवृत्ति है। सृष्टि के निर्माण एवं विकास का मूलाधार तथा प्रकृति की सृजन कारिणी शक्ति है। जो अपने विविध रूपों एवं प्रक्रियाओं में वनस्पति एवं जीवन-जगत में परिव्याप्त है। यही काम तत्व प्राणी जगत का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली भाव है। अर्थात् यही काम तत्व प्राणी जगत के जीवन की आधारशिला है जिस पर सृष्टि का भव्य-भवन निर्मित होता है।

भारतीय वाङ्मय में अर्थ एवं प्रयोग की दृष्टि से काम अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। वेद उपनिषद, पुराणतंत्र, ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत, श्रीमदभागत गीता इत्यादि भारत के मुख्य एवं महत्वपूर्ण ग्रंथों में काम के उदात्त एवं पवित्र रूप को श्रेयकर माना गया है। धर्म में भी काम को महत्ता प्राप्त है। इसका सजीव उदाहरण आज के वर्तमान युग में भी स्थित खजुराहो, कोणार्क, जगन्नाथपुरी का मंदिर जो भारतीय चार मुक्ति धामों में से एक परिगणित होता है। भारतीय धर्म में काम के स्वच्छंद रूप स्वीकारते हुए इसे आध्यात्म सिद्धि के मार्ग में प्रथम सोपान माना गया है। मंदिर के द्वार पर ही काम कला का वर्णन है। मनुष्य जब मंदिर में प्रविष्ठ होना चाहता है तो उसकी भावना काम तत्व की पवित्रता के अंतर को छूती हुई निकले। अर्थात् काम संभोग के बिना मनुष्य को आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त नहीं हो पाती।

काम मनुष्य की जन्मजात एवं सहजात प्रवृत्ति है जो दैवी प्रवृत्त अथवा दैव वरदान के रूप में स्वीकृत है और इस ईश्वरीय प्रसादन शक्ति तत्व को मनुष्य का

भोगना नैसर्गिक ही है। हिंदू जीवन में काम को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सोमदेव के अनुसार – "जो पुरुष काम और अर्थ की उपेक्षा कर केवल धर्माचरण में तत्पर होता है, वह मानो अपने पके हुए खेत को छोड़कर जंगल को जोतने जाता है।"[1] काम से अभिमान या अहं को प्रोत्साहन मिलता है जो मनुष्य की समस्त गतिविधियों का कारण है, चाहे वह तप, दान, युद्ध या कोई भी दुष्कर कर्म हो।

काम को भगवान वैश्वानर का मूर्त स्वरूप कहा गया है। संकल्प से कोमोत्पत्ति होती है, यह कम इच्छाओं के रूप में अनेक प्रकार का होता है। इस प्रकार मनुष्य की समस्त उचित और अनुचित गतिविधियों के मूल में काम विद्यमान है। श्रीमती ईरावती के अनुसार – "व्यक्ति जो कुछ चाहता है या चाहने की अभिलाषा करता है अथवा आकांक्षा ही काम है।"[2]

डॉ. कपाडिया ने "सौंदर्यप्रियता की वृत्ति की तुष्टि" को काम-भावना माना है। 'काम' शब्द के दो अर्थ हैं – (1) क्रीड़ा, विनोद, प्रसन्नता की मन: स्थिति बनाये रखना तथा तत्सहयोगी गतिविधियों का बढ़ावा देना (2) कामुकता अर्थात् अशलील चिन्तन विषयासक्ति। प्रथम अर्थ में गृहीत 'काम' सृष्टि का धारक तत्व है जैसा कि संकल्पसूर्योदय (3.40) में दार्शनिक कवि वेदान्नदेशिक ने लिखा है कि –

"कामोऽसौ समवर्तताग्र इति हि ब्रूते समीची श्रुति:
कामादेव जगज्जनिस्थितिचमैशघ पुमान् क्रोडति।
निष्कामोऽपि सकाम एवं लभते नि: श्रेयसं दुर्लभं
काम कस्य वशे क एब भुवने कामस्य न स्याद् वशे।।"[3]

दूसरे अर्थ विषयाक्ति की दृष्टि से काम जीवन का विधायक तत्व है। सृष्टि धारक-तत्व के रूप में ही 'काम' पुरुषार्थ माना गया है। कामुकता के रूप में नहीं।

---

[1] नी.वा. – 1.46
[2] भारतीय समाज की संरचना – श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, पृ.123 से उद्धृत
[3] संकल्पसूर्योदय – वेदान्न देशिका – 3.40

2.5.2 काम आधुनिक संदर्भ में

आधुनिक युग में भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद की जमकर टक्कर हुई। अतीत कालीन नैतिकमूल्य इस विज्ञानवादी वाद में बह गये परन्तु कभी नव-नवीन मूल्यों का उदय ठीक से नहीं हो पाया। अत: इन मूल्यों की खोज यात्रा अभी जारी है। वर्तमान वैज्ञानिक युग एवं विकासशील सभ्यता ने समाज में विभिन्न क्रांतियाँ उत्पन्न की जो मनुष्य की काम भावनाओं को तरलित कर रही हैं। समाज विज्ञान तथा जीव-विज्ञान ने भी मानव व्यक्तित्व पर एक दम नवीन दृष्टियों से अनुसंधान करते हुए अनेक नवीन तथ्यों की स्थापना की है। विज्ञान से अपार स्वच्छंदता और स्वतंत्रता पा कर मनुष्य ने धर्म तथा काम की मान्यताओं का नक्शा ही बदल दिया।

वैदिक युग में जब नारी अपेक्षाकृत स्वतंत्र थी तो काम संबंधों के संदर्भ में अपनी इच्छानुसार पुरुष का वरण कर सकती थी किन्तु मध्ययुग में जब वह बंधनों में जकड़ दी गई तो वह पुरुष की तृप्ति एवं भोग का एक साधन मात्र बनकर रह गई और यही वह समस्या थी। यहाँ दोहरे मानदण्ड अपनाए जाने लगे थे। पुरुष के लिए एक प्रकार के और स्त्री के लिए अन्य प्रकार के। किंतु आधुनिक युग ने तो प्राचीन मान्यताओं का पासा ही पलट दिया। एक ओर नवीन युग में शुद्ध वैज्ञानिक खोजों ने आधुनिक युग को वैज्ञानिक युग बना दिया तो दूसरी ओर काम संबंध अन्वेषण एवं औद्योगिकरण की काम रंजकता ने इस युग के पिचके हुए सामाजिक अवकाश क्षणों को काम युग बना दिया है।

आधुनिक युग में मनुष्य की काम भावना केवल देह की अपनी भूख मिटाने के मात्र दायरों में सिमटती जा रही है। मनुष्य केवल अपनी शारीरिक आवश्यकता एवं देह-दाह की पूर्ति के लिए मात्र इसका प्रयोग कर रहा है। यथा आज के समाज में काम केवल अंधी भूख बन गया है। यहाँ प्राचीन युग में काम भावना धर्म विरुद्ध एवं पवित्र मानी जाती थी, वही आज के युग में चांदी के चंद सिक्कों के लिए बिकाऊ होती जा रही है। अतीत में जब वह पशु-प्रवृत्ति के रूप में थी तब उसका स्वच्छंद रूप था जो कि आज वही देह की आवश्यकता की पूर्ति एवं देह की भूख बन कर मलिन हो गई है। अत: पेट की भूख को मिटाने वाली वृत्ति के समान प्रयोग में लाई जा रही

है तथा मनुष्य की अन्य अनिवार्यताओं की अपेक्षा अधिकतम् महत्व रखते हुए एक चलायमान सिक्का बन गई है।

2.6 मोक्ष

मानव का अंतिम लक्ष्य मोक्ष का है जिसके माध्यम से सभी कष्टों से छुटकारा मिल जाता है जैसे कि हिंदू धर्म में कहा गया है कि मोक्ष का अर्थ केवल यह नहीं कि मृत्यु के बाद भी जीवन रहे, क्योंकि हिंदू धर्म पुर्नजन्म में विश्वास रखता है। इस्लाम में इस प्रकार नहीं है। मोक्ष को संसार के चक्र से मुक्ति के रूप में माना गया है। डॉ. के.एम.कपाडिया के अनुसार – "मानव की शाश्वत प्रकृति की आध्यात्मिकता को स्वीकार कर जीवन का ज्ञान या आनन्द प्राप्त करना ही मोक्ष है।"[1] सांख्य शास्त्र में वर्णित है कि "जब पुरुष सब पाशों या जालों से मुक्त हो कर अपने स्वाभाविक कैवल्यपद (प्रकृति से संयोग न करना) को प्राप्त करता है तब मोक्ष की स्थिति पैदा होती है।"[2]

शिवगीता की मान्यतानुसार, "मोक्ष किसी स्थान पर रखी कोई वस्तु नहीं होती न गाँवों का भ्रमण कर इसे प्राप्त किया जा सकता है। जब हृदय की अज्ञान ग्रंथि नष्ट होती है। वही स्थिति मोक्ष कहलाती है।"[3] भगवद्गीता के पाँचवे अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि जिन व्यक्तियों में बुद्धि अथवा ज्ञान का द्वंद्व समाप्त हो जाता है अर्थात् जो यह जान जाते हैं कि एक ही ईश्वर सर्वव्यापी है, तथा जो व्यक्ति आत्मसंयम के माध्यम से परमार्थ करते हैं उन्हें प्राप्त होने वाला 'निर्वाण' ही वास्तविक मोक्ष है। "अद्वैतवाद की धारणानुसार ब्रह्मानंद को प्राप्त करना ही मोक्ष है जबकि हिंदुओं की आध्यात्मिक धारणानुसार जन्म, कर्म तथा पुनर्जन्म से पूर्णतया मुक्ति ही 'मोक्ष है।"[4]

---

[1] भारतीय समाज की संरचना – श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, पृ.123 से उद्धृत
[2] भारतीय समाज की संरचना – श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, पृ.123 से उद्धृत
[3] भारतीय समाज की संरचना – श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, पृ.123 से उद्धृत
[4] भारतीय समाज की संरचना – श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, पृ.123

"मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्म विषयक ज्ञान, इंद्रिय-संयम, अहिंसा और गुरु-शुश्रुषा ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठ मोक्ष साधक है।"[1] यहाँ पर मनु ने उपनिषद् वर्णित ब्रह्मज्ञान अथवा आत्माज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख तत्व बताया है। शब्द महानिधि में मोक्ष शब्द के निम्नांकित अर्थ बताये गये हैं , - "माया को बंधनों से छुटकारा ब्रह्मानंद की अनुभूति तथा वृध्यत्व को प्राप्ति" न्याय दर्शन के अनुसार दु:ख की अत्याधिक निवृत्ति को मोक्ष करते हैं। शंराचार्य के अनुसार जीव का ब्रह्म में लीन हो जाना ही मुक्ति है।"[2] शंकरचार्य मुक्ति का साधन ज्ञान मानते हैं, उपासना नहीं। उपासना केवल चित्त की शुद्धि होती है आत्मसाक्षात्कार से 'अहं-ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ का भाव आता है और जीव और ब्रह्म का भेद हटकर मोक्ष का साक्षात् अनुभव होता है। इस समय यह भावना आती है कि निर्विशेष नित्यशुद्ध बुद्ध स्वप्रकाश चिन्मात्र ब्रह्म मैं ही हूँ। यहाँ पर आकर जीव और ब्रह्म एक हो जाता है।

"तद्भावत संयोग भावों हानं तददेश: के कल्पम्।"[3]

वैदिक साहित्यओं, उपनिषदों ब्रह्म सूत्रों में मोक्ष के संदर्भ में विस्तृत लिखा गया है। गीता में कहा गया है कि जो जीव ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है उसका पुनर्जन्म बाधित हो जाता है।

माम्रपेत्य पुनर्जन्म दु:खालय मशाश्वतम्।
नानुवत्ति महात्मान: सं सिद्धि परमां गाता:।।[4]

"चैतन्य के मन से भगवद् शक्ति से आनन्द और आनन्द से परम मुक्ति की प्राप्ति होती है। भगवत् देवी भागवत तथा आध्यात्मिक रामायण में मोक्ष के तीन साधन बताये गये हैं - कर्ममार्ग, भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग।"

[1] मनुस्मृति – 12.83 पृ.648
[2] शब्दस्तोम महानिधि – पृ.336
[3] योगदर्शन – साध पाद, पृ.26
[4] गीता – 8/15

भारतीय आध्यात्मिक साहित्य में दु:ख के कई स्रोत हैं। इन सभी स्रोतों से छुटकारा पाना ही मोक्ष माना जाता है। भारतीय दर्शन में कर्मयोग, शक्तियोग, अष्टोगयोग, ज्ञानयोग को मोक्ष के साधन के रूप में देख सकते हैं।

"रामानुज ने कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों को बराबर महत्व दिया।"[1] पुराणों ने भक्तिमार्ग को अधिकाधिक प्रश्रय प्रदान किया। पुरणों ने ईश्वर की भक्ति, स्मरण और अभ्यर्यना से सभी के लिए मोक्ष संभव बताया। भक्ति मार्ग ने मोक्ष के लिए युगानुरूप सरल और व्यापक मार्ग प्रशस्त किया जो भारतीय संस्कृति की समन्वय और समायोजन की प्रवृत्ति का परिचायक है। स्त्री, शुद्र और चण्डाल सभी इसके अधिकारी हैं।

3. भारतीय समाज का आधुनिक रूप

भारतीय समाज का परम्परागत रूप समय के साथ-साथ परिवर्तित होता गया है। आधुनिक समाज में परम्परा से चली आ रही प्रथा और रुढ़ियों को कुछ मात्रा में परिवर्तित किया गया है। शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी का विकास के कारण आधुनिक समाज पुरातन समाज से भिन्न है। लेकिन आज भी कुछ परम्परा ऐसी भी हैं जो आधुनिक युग में प्रचलित है। जैसे पुरुषार्थ, आश्रम व्यवस्था आदि। आधुनिक समाज में चार पुरुषार्थ में से काम और अर्थ का महत्व माना जाता है। आश्रम प्रथा आधुनिक समाज में धीरे-धीरे परिवर्तित हो रही है। जो समाज पहले वर्ण या जाति और कर्मों के आधार पर विभक्त किया गया था, अब वह वर्ग के आधार पर विभाजित किया जाता है। जिसमें तीन वर्ग हैं। पूँजीपति वर्ग और मध्यवर्ग दोनों मिल कर निम्न वर्ग का शोषण करते हैं। आधुनिक युग में व्यवसाय के ढंग से भी परिवर्तन आया है।

सामान्यत: पूँजीपति युग में इमारतें आधुनिक शैली की बनाई जा रही हैं। अथवा वेशभूषा आधुनिक हो चली है। जैसे वाक्य सामान्य तौर पर प्रयुक्त होने लगे। उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होने तक आधुनिकता, सुधार, कार्य क्षमता,

[1] बुद्ध प्रकाश, भारतीय धर्म एवं संस्कृति, पृ.111

प्रगतिशीलता आदि पर्याय बनकर प्रयुक्त होने लगे। इसलिए आधुनिक समाज में सामाजिक वर्गों की सीमाओं के मिटने तथा ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों और महानगरों की ओर प्रस्थान सामाजिक गतिशीलता शिक्षा का प्रसार, ज्ञानविज्ञान का विस्तार, सामंती मूल्यों का ह्ास आदि शामिल हैं। अब हमारा समाज परम्परागत विचारों एवं मूल्यों, धार्मिक विश्वासों और रूढ़िगत रीति-रीवाजों के विरुद्ध नवीन और वैज्ञानिक आविष्कारों, विचारों, नए मूल्यों आदि नई तरीकों से समाज में पुष्ट हो रहा है।

आधुनिक युग के साहित्य पुरातन साहित्य के सौन्दर्य बोध को नष्ट नहीं कर पाता है। इस युग में साहित्यिक कृतियों को पूर्णता की दृष्टि से नहीं टुकड़ों-टुकड़ों में देखने की प्रवृत्ति बढ़ गई। वर्तमान साहित्य की सभी विधाओं में आधुनिकता दिखाई पड़ती है। विषयवस्तु एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से उस पर वर्तमान समाज की छाप पड़ी है। आधुनिक काल अपने ज्ञान-विज्ञान एवं नकनीकी के कारण परम्परागत समाज से भिन्न है। औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं बौद्धिकता के कारण भी राष्ट्र, देश, धर्म की नई-नई व्याख्याएँ की जाने लगी हैं। माना जाता है कि – पुरानी परम्परा के बिना आधुनिक समाज आगे नहीं बढ़ सकता है क्योंकि आधुनिक समाज का आधार पुराना परम्परागत रूप है। इस माध्यम से भारतीय समाज के आधुनिक रूप को देख सकते हैं।

3.1 अर्थ तथा काम प्रधान समाज

वैज्ञानिक युग में भारतीय समाज का परम्परागत रूप (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चार पुरुषार्थ में से धर्म और मोक्ष को गौण रखा गया और काम और अर्थ को महत्व दिया गया है। आधुनिक युग में मानव काम को साधारण रूप में सभी क्रियाओं की प्रेरणा-शक्ति माना गया है। मनु ने कहा है कि - कोई क्रिया इच्छा के बिना संभव नहीं, "अकामा वा क्रिया कवचित्" अर्थात् सभी छोटी से छोटी क्रियाएँ भी काम अथवा वासना के कारण ही घटित होती हैं – "*यद् यद् हि करूते किंचित् तद् तद् कामाय चेष्टिते।*"[1]

[1] मैं और हम – विश्वनाथ लिमये, पृ.120 से उद्धृत

मानव के लिए भोगेच्छा पशु के समान सरल एवं सुलभ नहीं। वह केवल शारीरिक वासना न होकर एक उलझन-पूर्ण गुत्थी है। वह जहाँ एक ओर सुसंस्कृत बनायी जाती है दूसरी ओर साथ ही साथ मस्तिष्क के भावों-विचारों लहरों के साथ उलझी हुई भी होती है। यह उलझना आयु की वृद्धि के साथ मनुष्य का 'मैं' जब विराट होने लगता है तब और भी उलझती है। अतः यह भोगेच्छा जहाँ एक ओर परिवार, समूह, राष्ट्र के रूप में जीवन बिताने की भूख के रूप में रहती है जिसके परिणाम स्वरूप स्नेह, सहानुभूति, सेवा का पारस्परिक आदान-पद्रान हो कर मनुष्य स्वयं भी तुष्ट होना है, वहाँ दूसरी ओर इस कामना के रूप में भी रहती है कि मनुष्य स्वयं की शक्तियों को अधिकाधिक विकसित कर विविध क्षेत्रों में उत्तमोत्तम कलात्मक नैपुण्य प्रकट कर, समाज को अर्पित कर सके ताकि ऐसा वातावरण एवं व्यवस्था उत्पन्न हो जिसमें हर व्यक्ति को समय, साधन एवं सुविधा उपलब्ध हो सके।

न्यायपूर्ण श्रम-विभाजन के आधार पर धन-संपदा, प्राथमिकता, राष्ट्रीय संपदा के रूप में निर्मित एवं वृद्धिगत होती है जो बाद में उपांग के नाते व्यक्ति-व्यक्ति के घरों तक वितरित हो सकती है। तभी संगीत-साहित्य, सजावट, विविध कलाएँ, कृषि-बागवानी, अभियान्त्रिकी, वास्तुशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में अतीव सुसंस्कृत समाज-जीवन का विकास संभव हो सकता है। स्वाभाविक ही यहाँ अर्थ लाभ या धन-संग्रह पर ही बल दिया गया है जिसके बिना समृद्ध, सुसभ्य परन्तु सुसंस्कृत जीवन संभव होता है क्योंकि तभी समृद्धि के साथ सभ्यता की सुसंस्कृतता का मेल बैठता है।

इसलिए यह ध्यान देना है कि अनियंत्रित इच्छा या वासनाओं से उत्पन्न अत्यधिक स्वार्थ भाव न तो व्यक्ति सुख या समाधान दे सकता है, न ही राष्ट्र की आर्थिक प्रगति साधता है। अतः अर्थ सत्ता का नियंत्रण एवं वासनाओं का संयम अभीप्सित है। आप वासनाएँ जितनी बढ़ायेंगे वे उससे भी अधिक मात्रा में बढ़ती जाती हैं। हम पाते हैं कि वासनाओं का या कामनाओं का कोई अन्त नहीं। इसलिए यह श्लोक दृष्टव्य है – "*तृष्णा न जीर्ण वयमेव जीर्णा:*" *।* (भले ही आयु क्षीण नहीं होती अपितु सतत् अभ्यास से बढ़ती है)। इसलिए इन कामनाओं के नियंत्रण के लिए धर्म का साहरा लेना पड़ता है तथा वह मिलता भी है। अर्थोपार्जन एवं अर्थ का

उपभोग करते समय यदि धर्माचरण का ध्यान रखा गया तो ईर्ष्या-द्वंद्व से रहित, स्वस्थ एवं सुखी जीवन निश्चित ही बिताया जा सकता है। इसलिए अर्थ प्राप्ति एवं काम की पूर्ति के लिए धर्म आधार माना गया है जो मानव को मोक्ष की ओर आगे बढ़ा सकता है। लेकिन आधुनिक युग में मानव धर्म और मोक्ष को नहीं मानता है। अर्थोपार्जन करता है और काम को महत्व देता है।

प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री के अधिकारी विद्वान डॉ. जे.के.मेहता का कहना है कि – "आर्थिक जगत् में वासनाओं को या आवश्यकताओं को कम करते चलो"[1] (Minimisation of wants) का सिद्धान्त प्रस्तुत कर हलचल मचा दी थी। उनका कहना है कि इसी सिद्धान्त के अनुसार न केवल व्यक्ति अपितु उसका राष्ट्र तथा समस्त विश्व भी शांति को प्राप्त कर सकेगा। यह अवश्य है कि सिद्धान्त को व्यवहारिक करना पड़ता है या तो व्यक्ति अपना अर्जन एवं आवश्यकताएँ कम करनी पड़ती हैं। अथवा अपना मन उदार एवं परोपकारी बनाना पड़ता है तभी उसके धनार्जन के प्रयास समाज के लिए लाभकारी तथा उसे सुख-शांति दे सकेंगे। इस दृष्टि से धर्म, व्यक्ति तथा समाज के लिए धनार्जन एवं धन विनियोग में मार्गदर्शक बनता है जिसके अनुसार अर्थ, काम संबंधी सामाजिक प्रक्रिया व्यवस्थाबद्ध हो कर एकात्य ही मोक्ष प्राप्ति की ओर भी ले जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि धर्म द्वारा अर्थ और काम का नियंत्रण होता है। धर्म अर्थोपार्जन में निश्चित सहायक होता है। '*धर्माद अर्थश्च कामश्च*' का अर्थ यह सुस्पष्ट होता है। धर्म के बिना अर्थ और काम उपलबध नहीं हो सकते, सो बात नहीं। धन तो वेश्याएँ भी कमाती हैं परन्तु धर्म के कारण अर्जन एवं उपभोग दोनों सुखदायक एवं हितकारक होते हैं। इसलिए धर्मानुसार अर्जन एवं धर्मानुसार विनियम यह ऊपरी श्लोकार्ध का अर्थ हुआ। अत: भारत आध्यात्म प्रधान देश होने के बावजूद यहाँ अर्थ और काम का स्थान महत्वपूर्ण है। यहाँ धर्म और मोक्ष का स्थान ही नहीं है।

आधुनिक युग में विज्ञान के विकास ने ही अर्थ और काम को महत्वपूर्ण बनाया है। वास्तविकता यह है कि अर्थ और काम साधते समय ध्यान रहे कि स्वयं

[1] मैं या हम – विश्वनाथ लिमये, पृ.123 से उद्धृत

की तुष्टि के अलावा वह औरों के लिए भी कल्याणकारी होना चाहिए। लेकिन आज के समाज में लोग किसी दूसरे की ओर नहीं देखते हैं, अपना काम महत्वपूर्ण मानते हुए करते रहते हैं। चाहे उससे दूसरे की क्षति क्यों न हो अपना स्वार्थ हासिल करना ही उसका मकसद रहता है। आधुनिक युग में लोग अर्थ के पीछे भागते रहते हैं। इस अर्थ का सदुपयोग न करके दुरोपयोग करते रहते हैं।

भारतीय धारणानुसार आर्थिक ढाँचा ऐसा हो कि वह मारे अन्दर के मानवी गुण या पूर्ण मानवत्व के विकास में सहायक हो। लेकिन आधुनिक युग में ऐसा नहीं होता है। भारतीय विचारकों के अनुसार यह ढाँचा ऐसा हो गया है कि मानव अर्थ नीति के पहिये जैसे घूमते रहते हैं। हमारे मानव-जीवन का लक्ष्य माना है ईश्वरत्व तक विकास या मोक्ष प्राप्ति। अब मानव मोक्ष और ईश्वर छोड़कर अर्थ और काम को अपना रहा है।

मनुष्य जब कोई काम स्वयं के लिए या स्वयं की सेवा के लिए ही करता है, तब वह साधाराण पशु के साथ खेल खेलने वाला व्यवहार है, इसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं। परन्तु जब वह काम करते समय औरों के हितों का विचार मस्तिष्क में रखकर काम करता है या दूसरों के हित के लिए करता है तो वह धर्म हो जाता है। इस संदर्भ में भारतीय धारणाओं में अर्थ नीति का रूप वही होगा, जिससे वह मनुष्य के अंदर के पशु की भूख भी शांत कर सके तथा साथ ही उसे अवसर दे सके कि वह उसके अंदर के अनेक आयाम वाले ईश्वरीय तत्व का भी विकास कर सके। यही मानव एवं मानव जाति का एकात्म चित्रण साधने वाली बात होगी। साधारणत: अर्थ के बारे में सब को पता है। फिर भी अर्थनीति को केवल सौद्धांतिक या मौलिक दृष्टिकोण का ही चित्रण किया जा सकता है। वैसे भी सैद्धांतिक बातें ही त्रिकाल बाधित हो सकती हैं। वे सब नहीं हैं। अनेक सिद्धान्त देश-काल-परिस्थिति के परे होते हैं। वे अपरिवर्तनीय होते हैं। कई ऐसे होते हैं जो देश-काल-परिस्थिति सापेक्ष होने से परिवर्तित होते हैं या किये जा सकते हैं। अत: व्यवहारिक ढाँचे तो लचीले ही रहते हैं। देश काल परिस्थिति के अनुसार में ही उनमें गति रहती है। भारतीय धारणानुसार आर्थिक ढांचा ऐसा हो कि वह हमारे अन्दर का मानवी गुण या पूर्ण मानवत्व के विकास में सहायक हो। इस ढांचे में ऐसी व्यवस्था हो जिससे मनुष्य की स्वाभाविक

प्रवृत्ति संस्कारित होकर उसके परिणामस्वरूप अधिकाधिक उत्पादन, सम्यक् वितरण तथा संयमित उपभोग की वृत्ति उसमें उत्पन्न हो सके। आर्थिक क्षेत्र में 'संस्कृति' का यही कार्य है। दुर्भाग्य से पश्चिमी विचारकों का इधर ध्यान ही नहीं गया है। भारतीय विचारकों के अनुसार यह ढांचा ऐसा न हो कि जिससे हमारे मानवी गुण या भाव दबाये जायें या उनका अवमूल्यन हो कर मानव अर्थनीति के पहिये के लिए केवल चिकनाई के रूप में काम आये। हमने मानव-जीवन का लक्ष्य माना है ईश्वरत्व तक विकास या मोक्ष प्राप्ति। इस लक्ष्य तक पहुँचने वाली आर्थिक रचना क्या हो सकती है। इसका हम विचार करें। हम उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित करें – समाज की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति एवं उसका विकास तथा राष्ट्र का संरक्षण, यही किसी भी वस्तु के उत्पादन का लक्ष्य होना चाहिए। पश्चिमी देशों में उत्पादन की असीम वृद्धि को ही समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। पर क्या यह सत्य है कि समृद्धि के लिए असीम या अनाप-शनाप उत्पादन आवश्यक है? फिर इस कारण उन्हें आवश्यकताएँ बढ़ानी पड़ती हैं। फिर यह भी प्रगति एवं समृद्धि का परिचायक माना जाता है। अधिक वासनाएँ, अधिक आवश्यकताएँ अधिक उत्पादन, यह चक्र चालू हो कर वस्तुओं के निर्माण के रूप में अंतर्हित समृद्धि तो बढ़ती है, व्यापार बढ़ता है, बढ़ाया जाता है, धन का आवागमन भी बढ़ता है, पर क्या उससे शांति आयेगी? वासनाएँ बढ़ती जायेंगी तो जिन्हें वस्तु 10 गुना अधिक उपलब्ध हो रही है, उन्हें भी शांति नहीं मिलेगी। तथा यदि इन्हें 10 गुना अधिक वस्तुएँ मिलेंगी, तो ऐसे अनेक होंगे जिनकी न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होंगी। ये भी असतुष्ट रहेंगे। अत: केवल अशांति, असंतोष, ईर्ष्या, द्वेष, संघर्ष का ही बाजार गर्म रहेगा। क्या हम वर्तमान समृद्धि की ओर बढ़ने वाली अर्थनीति की नकल करें? क्या यह उचित होगा।

आधुनिक युग में मनुष्य की कर्त्तव्य-च्यूति की भावना पैदा करने का मुख्य कारण अर्थ है। जब तक मनुष्य को अर्थ मिलता है तब तक अपना काम करता है। मनुष्य को अर्थ की लालसा ही समाज में असामाजिक बना देती है।

धन का काम के साथ मेल बिठाना उचित नहीं। योग्यता-सम्बंधी जिन मुद्दों के आधार पर दाम (वेतन) निश्चित किये जाते हैं, उनका पर्याप्त विचार आधुनिक

अर्थशास्त्र में हुआ है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि उसमें हर मानव का मानव के विचार न हो कर मानव का उसका श्रम एक खरीद योग्य या क्रय-विक्रय की वस्तु मान ली गयी है। अत: लगभग सभी व्यवस्थाओं में उसे न्यूनतम आवश्यकताओं पर आधारित वेतन देना मानव के नाते भी आवश्यक नहीं माना जाता। अन्य योग्यताओं के आधार पर भले ही मानते हों, पर सच्चाई यही है कि धन ही सर्वाधिक कीमती वस्तु नहीं है। इसलिए पर्याप्त धन देने के बाद भी आज के तथाकथित उच्च वर्गीय स्नातक (बी.ए., एम.ए. आदि) शौचालयों की सफाई का काम स्वीकार नहीं करेंगे। अत: धन की महिमा सर्वमान्य होने के बाद भी यह बात आग्रहपूर्वक कही जा सकती है कि सब बातों का धन के रूप में मूल्यांकन हो सकता है यह बात सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक सत्य नहीं है। कुछ उदात्त श्रेष्ठ भावनाएँ होती हैं जिनके कारण मनुष्य लड़ता है, मरता है, स्वयं का प्राण जोखिम में डालकर दुखियों को बाढ़ से, आग से बचाता है। मानवीय या एकात्य अर्थशास्त्र में इसका अपना अलग एवं विशेष स्थान रहेगा क्योंकि काम अमोल होता है।

3.2 धनोपार्जन के विषम रूप

आधुनिक युग में धनोपार्जन एक गंभीर समस्या बन गयी है। इस समाज में मनुष्य धनोपार्जन के लिए कई तरीके अपना रहे हैं। कोई व्यवसाय करता है तो कोई हत्या, कोई अपहरण, कोई दलाली, कोई वेश्यावृत्ति, कोई मारपीट आदि विषम रूप समाज में दिखाई देते हैं। आजकल लोग रातों-रात करोड़पति होने के लिए सोचते रहते हैं। इसलिए चाहे उन्हें कुछ भी करना क्यों न पड़े। आधुनिक युग में मनुष्य धन के पीछे भाग रहा है। गाँव से लेकर शहर तक लोग धन कमाने में व्यस्त हैं। आजकल लोग कम श्रम से ज्यादा पैसे के लिए सोचते हैं। कुछ लोग बिना श्रम किए पैसे कमाना चाहते हैं। हमारे समाज में पूँजीपति वर्ग निम्नवर्ग का शोषण करता रहता है। निम्नवर्ग चाहे कितना भी श्रम करे उसे श्रम के अनुसार पारिश्रमिक नहीं मिलता है। लेकिन पूँजीपति वर्ग बिना परिश्रम से मुनाफा कमाता रहता है।

आधुनिक युग में पूँजीपति समाज में आदमी-आदमी के बीच सिर्फ पैसे का संबंध दिखाई देता है। मानव पैसे के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है।

साधारणत: समाज में जितनी भी समस्या हैं इन सब का मूल कारण अर्थ ही है। अब अर्थ के बिना मनुष्य घोंघा जैसा है।

भारतीय समाज में अर्थ ही एक मात्र सहारा है जो मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति करता है। आज अर्थ के बिना समाज में कुछ करना मुश्किल होता जा रहा है। इसलिए मनुष्य किसी-न-किसी रूप में धनोपार्जन करता रहता है।

गाँव से लेकर शहर तक सुबह की चिड़ियों की चहचहाट से लेकर शाम तक लोग धनोपार्जन में व्यस्त रहते हैं।

आधुनिक समाज में धनोपार्जन का रूप है वेश्या वृत्ति। गाँव से लेकर शहर तक यह समस्या अभी भी गंभीर और ज्वलंत बनी है। नगरीय समाज में होटलों में नारी अपने पेट के लिए नृत्य और धंधे करती हैं।

आधुनिक युग में धनोपार्जन एक ऐसा व्यवसाय बन गया है जो किसी को अंधा बना देता है तो किसी की मानमर्यादा बढ़ाता है, तो किसी के आंतरिक स्तर को छोटा बना देता है तो किसी को बाहरी तौर पर बड़ा बना देता है। धनोपार्जन एक सामाजिक कारण है जो मनुष्य अपनी आवश्यकता के लिए और पारिवारिक खुशी के लिए करता है। 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में धनोपार्जन के विषम रूप को पुरुष वेश्या और माफिया के रूप में चित्रित किया गया है। आगे के अध्यायों में इसी संदर्भ में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

3.3 विषम यौन संबंध

कामवृत्ति मनुष्य की अपितु प्राणी मात्र की सहज प्रवृत्तियों में सबसे प्रबल है। सभ्यता के विकास के साथ काम की अभिव्यक्ति के माध्यम बदल जाते हैं। परन्तु काम कभी नहीं मिटता। वैदिक काल से लेकर साहित्य में काम के विभिन्न पहलुओं का चित्रण होता आया है। भारतीय परिवेश में काम को गुप्त माना गया है। विवाहेत्तर काम संबंधों को दुश्चरित्रता का पर्याय माना गया है।

आधुनिक युग में यौन संबंधों के विषय में मानव की दृष्टि में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। अब ये संबंध पाप-पुण्य की परिधि से ऊपर उठ गये हैं। निम्न मध्यम वर्गीय समाज में आज भी इन संबंधों को लेकर परम्परागत मान्यताएँ प्रचलित हैं। परन्तु शिक्षित उच्च मध्यम वर्ग तथा महानगरीय जीवन में विषम यौन संबंध काफी सामान्य हो गये हैं। यह सही है कि समाज इन संबंधों को आज भी हेय समझता है, परन्तु पहले इनका विरोध जितने तीव्र शब्दों में किया जाता था, विरोध का स्वर अब मन्द पड़ गया है। लोगों में एक विचित्र सी उपेक्षा आ गई है। अब इन संबंधों को देखकर उतना ववेला नहीं उठता, हमें क्या मतलब है, की भावना ने विषम यौन संबंधों को बढ़ाने में काफी अनुकूल भूमिका निभायी है। अब ऐसे उदाहरण इक्का-दुक्का हर जगह मिल जाते हैं, जहाँ विवाहेत्तर संबंधों को जानते हुए भी लोग उनका विरोध नहीं करते।

मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक स्थिति ने भी विषम यौन संबंधों के लिए भूमि तैयार की है। अधिकतर परिवारों में महिलाएँ भी नौकरी करने लगी हैं। घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर अब उन्हें उन्मुक्त रूप से पुरुषों से मिलने-जुलने के अवसर मिले हैं। आज की नारी के लिए दूसरे व्यक्ति के साथ शारीरिक संबंध रखना सहज हा गया है। वह पतिव्रता धर्म की, रूढ़ियों को तोड़कर नये मूल्यों को अपना रही है। दरअसल पुरुष भी इस स्थिति के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। वह दूसरी स्त्री के साथ शरीरिक संबंध रखना चाहता है। अपनी काम वासना मिटाने के लिए अन्य किसी भी स्त्री का सहवास चाहता है। नारी भी घर की चार दीवारी में घुट-घुट कर जीना नहीं चाहती और उन्मुक्त संबंधों की ओर झुकती नजर आती है। अब परपुरुष का स्पर्श उसके लिए पहले की तरह वर्जित या पाप नहीं रहा। नारी-जागरण की प्रेरणा ने भी नारियों में स्वतंत्र एवं उन्मुक्त आचरण का मार्ग प्रशस्त किया है।

अब मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेम के रूप के संबंध में भी लोगों की धारणा बदली है। यह आवश्यक नहीं कि जिसके साथ काम संबंध हो उससे प्रेम भी हो। यह भी आवश्यक नहीं जिसके साथ विवाह हो उसी से प्रेम हो और उसी से काम संबंध भी हो। वस्तुतः विवाह एक सामाजिक मूल्य है। वह एक सामाजिक आवश्यकता है,

एक व्यवस्था है। काम एक प्राकृतिक आवश्यकता है। प्रेम हृदय से दूसरी ओर संबंध रखने वाली रागात्मक वृत्ति दैहिक भूख है और काम संबंध क्षणिक भौमिक प्रक्रिया है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास के कारण प्रेम एवं काम संबंधी धारणाओं में बदलाव आया है। नगरों में स्त्री विवाह के बाद भी दूसरे पुरुष से संबंध रखती है। इसी प्रकार पुरुष भी। ये संबंध समाज में अस्वीकृत हैं।

यौन प्रवृत्ति मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियों में से एक है। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक आकर्षण एक नैसर्गिक मनोवृत्ति है। आधुनिक लेखक अपनी रचना में यथार्थ को उसके खुले रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। देखो और भोगो को निरावरण प्रस्तुत करने वाला दृष्टिकोण की भिन्नता ही वह कारण है जिससे हिंदी उपन्यासों में सैक्स का प्रवेश गहरा हो गया है।

यद्यपि सैक्स आज हमारे लिए कोई नवीन विषय नहीं रहा, फिर भी सैक्स का खुला चित्रण हमारे परिवेश की स्वीकृति के अन्तर्गत नहीं आया। आज का उपन्यासकार समझता है कि कामजीवन का असामंजस्य और विषमता आधुनिक समाज में बहुत दूर तक फैला एक रोग है जो कि समकालीन स्त्री-पुरुषों की दैहिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक मान्यताओं और विश्वासों के रूप को निर्धारित करने का मूल उत्स बना हुआ है। नैतिक दायरे तक सीमित न रखकर उसे मानव के विकास की सहज प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया गया है।

यौन-भूख की तृप्ति हर स्त्री-पुरुष के लिए प्राकृतिक एवं अपरिहार्य है। हर मनुष्य में यौन-भूख प्रचुर मात्रा में होती है परन्तु सामाजिक मान्यताओं, मर्यादाओं और नियन्त्रण के कारण व्यक्ति इनका दमन करने का प्रयास करता है। पाश्चात्य देशों में जहाँ सैक्स खुला है वहाँ कोई वर्जना नहीं है। परन्तु हमारे यहाँ सैक्स को सामाजिक वर्जना माना गया है। गर्भ-निरोधक विधियों से तो और भी बढ़ावा मिला है। अवैध संबंध भी समाज में एक विकृत्ति है। डॉ. भैरू लाल गर्ग ने लिखा है – "काम तुष्टि के लिए व्यक्ति किसी भी नारी से संबंध स्थापित कर लेता है और समय और

परिस्थिति की परवाह किए बिना कामतुष्टि कर लेता है।"[1] यौन एवं प्रेम के मामले में पुरुष ने स्त्री से अधिक स्वेच्छचारिता अपनायी है। शहरों में यौन-संबंधी परिवर्तन बहुत ही तीव्र गति से हुए हैं, जिसका प्रमुख कारण – "पाश्चात्य सभ्यता, बढ़ती हुई भौतिक चमक-दमक, नई शिक्षा, आधुनिकरण, सिनेमा, गर्भपात एवं गर्भ-निरोध साधन हैं।"[2]

हिंदी उपन्यास साहित्य में अश्लील यौन संबंध को चित्रित करने की परम्परा अधिक पुरानी नहीं है। प्रत्युत जब हिंदी उपन्यासकारों ने वेश्यालयों, विधवा आश्रमों, निम्नवर्गीय जातियों का यथार्थवादी दृष्टि से चित्रण करने का आधार बनाया तथा साहूकारों की विलासताओं को उजागर करने के उद्देश्य से कलम उठाई तब अनायास ही जीवंतता की सृष्टि करने के लिए उन्हें अश्लील यौन-संबंधों की ओर भी दृष्टि डालनी पड़ी।

डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम ने लिखा है – "यौन विकृत्ति जैसे दुर्वह भीषण सामाजिक समस्याएँ परिस्थिति सापेक्ष हैं।"[3]

मुंशी प्रेमचंद तथा उनके सह-लेखकों का ध्यान भी इस ओर गया था, पर उन्होंने सांकेतिक भाषा में ही ऐसे प्रसंग चित्रित किए। आदर्श पर चोट होने तथा साहित्य के अमर्यादित होने की वजह से उन्होंने अश्लील यौन संबंधों को अधिक उभार नहीं दिया। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि समाज के धनी सम्पन्न लोग सदा से ही बिलासी या विलास प्रिय रहे हैं और धूर्तता के नाम पर उन्होंने हर काल में सर्वहरा वर्ग की बहू-बेटियों के साथ बलात्कार किए हैं। यह समस्या विश्व की समस्या है। केवल भारतवर्ष की ही नहीं। इस घटना को उपन्यासकार अपनी कृतियों में समाज का सर्वागींण यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम ने लिखा है – "यौन की अतृप्ति कला को निरूत्साहित तथा जीवन को निष्क्रिय बना देती है।"[4]

---

[1] स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन – डॉ. भैरूलाल गर्ग, पृ.88
[2] स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी कहानी में गाम्य जीवन और संस्कृति – डॉ. राजेन्द्र कुमार, पृ.58
[3] आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना – डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम, पृ.211
[4] आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना – डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम, पृ.210

यौन संबंध के बारे में डॉ. सुशील मित्तल ने कहा है – "सैक्स इन्सान की सबसे बड़ी कमजोरी और न मिटने वाली भूख है पेट की भूख के साथ शरीर की भूख उसकी अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक है।"[1] आजकल के आधुनिक युवक और युवती प्रेम और प्यार के नाम पर सैक्स करते रहते हैं। जो समाज में अस्वीकृत है। फिर भी आधुनिक युवक और युवतियाँ आधुनिक शैली में सिनेमा, टी.वी., आडल्ट फ़िल्म आदि गंदे-गंदे दृश्य देख कर अपने आप को यौनच्छा से रोक नहीं पाते हैं। समाज में विषम या विसंगति की परिस्थिति सृष्टि करती है। इससे सामाजिक ढाँचे को हिलाकर रख देती है।

आज मानव-समाज की विकृत यौन-प्रवृत्तियाँ हैं किस्सागोई नहीं है। समाज में शोषण के नाम पर यौन-शोषण हो रहा है। देखा गया कि आर्थिक विषमता नारी के यौन-शोषण का कारण है। देखा जाए तो नारी को वेश्या बनाने में मुख्य कारण आर्थिक विषमता मानी जाती है।

वर्तमान युग में विषम यौन संबंध इस कदर तक बढ़ चुका है कि मन चले युवक समाज की परवाह किए बिना, स्वच्छंद यौनचार में विश्वास करते हैं। आज के युवक और युवतियों की लीला भूमि पर्क, सी-बीच देखने को मिलती है। हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में समाज की विकृति यौन समस्याओं की ओर खुले रूप से दृष्टिपात करने वाले लेखकों की संख्या अधिक नहीं है लेकिन अब लेखिकाओं ने अपनी रचना में खुले रूप से यौन-संबंध का यथार्थ चित्रण किया है। परिवार के समग्र रिश्ते नातों के मूल में काम-भावना को केन्द्रित करने वाले सिंगमंड फ्रायड ने एक स्थान पर लिखा है कि पिता-पुत्री के बीच में सैक्स एक धुरी की तरह कार्यरत है। पर सच्चाई यह है कि काम-भाव व्यक्ति को कभी नहीं छोड़ता। सुपर ईगो (आदर्श अहम्) की कमी जहाँ हुई, व्यक्ति पशु बन जाता है। सारे नियम ताक पर रख देता है।"[2]

---

[1] आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ – डॉ. सुशील मित्तल, पृ.249

[2] आधुनिक कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ – डॉ. ज्ञान चन्द्र शर्मा, पृ.238 से उद्धृत

आज कोई भी उपन्यासकार यौन मामलों के चित्रण में अपने को स्वतंत्र महसूस करता है। इसलिए नहीं कि समाज में यौनचार बढ़ाया जाए, बल्कि इसलिए कि किसी भी समाज का पूर्ण मूल्यांकन तभी सम्भव होता है, जब उस समाज-विशेष की यौन प्रवृत्तियों का समावेश भी किया जाए। ग्रहण किए गए सामाजिक पक्ष को पूर्णतया चित्रित करने के उद्देश्य से हिन्दी उपन्यासकारों ने मानव समाज का यौन संबंध की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

3.4 अपराधीकरण

हर समाज में जितनी अच्छाइयाँ होती हैं उतनी बुराइयाँ भी होती हैं लेकिन अहिस्ता-अहिस्ता बुराइयाँ अच्छाइयों के ऊपर हावी होती जाती हैं। आज जीवन में किसी भी क्षेत्र में चले जाएं तो वहाँ अपराधीकरण का ही बोलबाला नजर आता है। आज समाज में अपराधीकरण की जड़ें इतनी मजबूत हो गई हैं कि साँस लेने के लिए भी अपराध का सहारा लेना आवश्यक हो गया है। आज राजनीति, स्वास्थ्य सेवाएँ, शैक्षिक संस्थान, धार्मिक स्थल कोई भी जगह अपराध से अछूता नहीं है। दिन-दहाड़े लूटपाट, मारपीट, हत्याएँ, बलात्कार, डकैतियाँ आदि घटनाएँ निरन्तर होती रहती हैं। वर्तमान काल में देखा जाए तो अर्थ ही अपराधीकरण का मूल कारण है।

गाँव से लेकर शहर तक, शहर से लेकर महानगरों तक किसी-न-किसी रूप में अपराधीकरण व्याप्त है। अपराधीकरण का सीधे तौर पर बेकारी, अशिक्षा, क्षीण स्वास्थ्य सेवाएँ आदि भारत की समस्याओं पर सीधा असर डाल रही हैं। इसलिए हमारे देश में गरीबी या दरिद्रता जैसी स्थिति पैदा होती है। आज के समाज में अपराधीकरण और अपराध दोनों धीरे-धीरे अपनी जड़ें फैला रहे हैं।

वर्तमान काल में अपराधी राजनीतिज्ञों की इसलिए मदद् करते हैं ताकि भविष्य में उनकी अपराधिक गतिविधियों के लिए उनका इस्तेमाल करें। आज चारों ओर अपराधीकरण व्याप्त है। अपराधीकरण राजनीति द्वारा ही अपना क्षेत्र विस्तार करता है। हम देखतें हैं कि बंबई और दिल्ली जैसे महानगरों में राजनीति के

अपराधीकरण का पहला शिकार प्रशासन और पुलिस है। इसके परिणाम स्वरूप कानून की एक व्यवस्था तैयार हुई जो न तो ईमानदार है और न निष्पक्ष। पुलिस सेवा की नैतिकताएँ ताक पर रख दी जाती हैं और इसकी वजह से सुव्यवस्थित अपराध के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। अब परम्परागत अपराध जैसे उठाईगिरी, चोरी, सेंधमारी, छीना-झपटी, डकैती आदि नहीं रही। अपराध बदल कर 'संगठित अपराध' पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। व्यापारियों, बिल्डरों, सिनेमा निर्माताओं से भी फिरौती के लिए अपहरण, शहरी संपत्ति को जबरन हथियाना और बेचना, मादक द्रव्यों का व्यापार, हथियारों की तस्करी और जघन्य हत्याएँ आदि।

आज महानगरों में अपराधीकरण बहुत तेजी से और व्यापक रूप में बढ़ रहा है। अपराधीकरण के कारण सबसे अधिक त्रस्त देश का आम आदमी है। नगरों में यह एक ऐसा रोग बन गया जो लाइलाज होता जा रहा है। अपराधीकरण का व्यापक रूप में बढ़ने के कारणों में से राजनैतिक सत्ता एक कारण हो सकती है।

समाज में अपराधीकरण को दूर करने के लिए सरकार की ओर से अनेक प्रयास और घोषणाएँ होती हैं लेकिन जो सरकार अपराधियों को पनाह देती है वही किसी प्रकार से अपराधीकरण को समाज से हटने की बात करती है। साधारणत: ऊपरी तौर पर प्रयास और घोषणाएँ होती रहती हैं परन्तु आंतरिक तौर पर कुछ बदलता नहीं है।

अपराधीकरण आर्थिक, राजनैतिक और औद्योगिक सभी क्षेत्रों में भारत में व्याप्त है। जनता, नेता और सरकार सभी को यह विदित है। वस्तुत: अपराधीकरण को एक परम्परा ही मान सकते हैं।

3.5 माफ़िया

आज का युग हत्याओं की सुपारी का युग है। जहाँ कुछ रुपयों के एवज में किसी की भी हत्या की सुपारी दी जाती है। अब भारत के महानगरों में माफिया एक गंभीर और ज्वलंत समस्या है जो उभर कर सामने आ रही है। आज समाज में

माफ़िया किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। जैसे चोरी, डकैती, अपहरण, हत्या, धोखाधड़ी, मारपीट आदि।

आज नगरों में माफ़िया-तंत्र एक नये व्यवसाय के रूप में उभर रहा है। जिसको चला रहे हैं तथाकथित नेता एवं पूँजीपति वर्ग। खतरनाक सरगनाओं को पुलिस सहयोग भी प्राप्त है। इसलिए इन सरगनाओं का प्रभुत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अपराधी गिरोह एक या दो नहीं बल्कि एक साथ कई संख्या में नगरों में फैले हुए हैं। नशीले पदार्थों की तस्करी के अलावा, अपहरण, हत्या आदि की सुपारी, मटका, खेल आदि को सारे देश में फैला कर परिवेश को कलुषित कर रहे हैं।

धर्म का स्थान, सांप्रदायिक ताकतों ने ले लिया है और ईश्वर उपासना-भक्तिपूजा का स्थान फाइव-स्टार कल्चर, फार्म हाउस के भीतर-बाहर फैला उपभोक्तावादी माफिया-तंत्र का मायावाद हिंसा अपहरण का रूप है।

आज के उत्तर-आधुनिक समाज में माफिया इतनी बढ़ोत्तरी पर खड़ा है जिसे मिटाने में सरकार की तरफ से कई प्रयत्न किये जा रहे हैं लेकिन हमारे महानगरों और पुलिस का भी हाथ है जिसके कारण यह स्थिति रुकने के बजाय अत्याधिक मात्रा में बढ़ रही है।

आगे के अध्यायों में 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास चित्रित अपराधीकरण के विषम रूपों की चर्चा अपेक्षित है।

द्वितीय अध्याय

‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में धनोपार्जन के विषम रूप तथा परिणाम

द्वितीय अध्याय

‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में धनोपार्जन के विषम रूप तथा परिणाम

1. ईमानदारी (सामाजिक) से धनोपार्जन
2. बेईमानी (असामाजिक) से धनोपार्जन

1. परिणाम
    - 1.1 अपराधीकरण
        - 1.1.1 अपराधीकरण के कारण
            - 1.1.1.1 आर्थिक कारण
            - 1.1.1.2 शैक्षिक संस्थाओं के विषम रूप
            - 1.1.1.3 विषम पारिवारिक स्थितियाँ
            - 1.1.1.4 विवाहपूर्व यौन संबंध
            - 1.1.1.5 विवाहैत्तर यौन संबंध
                - शिल्पा
                - पारूल
                - यास्मीन
                - ब्लॉसम
                - भोला
                - नील
                - श्रीमती दस्तूर
            - 1.1.1.6 सामाजिक दबाव

2. अपराध के विभिन्न रूप

2.1 माफिया

2.3 वेश्यावृत्ति

2.4 पुरुष वेश्यावृत्ति

2.5 विषम धनोपार्जन के साधन

द्वितीय अध्याय

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में धनोपार्जन के विषम रूप तथा परिणाम

मानव एक विवेकशील प्राणी है। वह अपनी विवेकशीलता के अनुसार मूल्यों को निर्धारित करता है। सामाजिक जीवन मूल्य उसके विकास की सामान्य प्रक्रिया है। जीवन-मूल्य मनुष्य के आकर्षण और वस्तु की वांछनीयता को पूरा करता है। जिसके द्वारा मनुष्य की इच्छाएँ पूरी होती हैं। सामाजिक जीवन मूल्यों के अंतर्गत नैतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, भौतिक आदि अनेक प्रकार के मूल्यों को ले सकते हैं।

मनुष्य जिस समाज में रहता है उसके प्रभावों से बच नहीं सकता। उसका मूल्य चिन्तन सामाजिक मूल्य व्यवस्था पर गहन प्रभाव डालता है। आजकल के समाज में धनोपार्जन के कई रूप सामने आते हैं। जैसे व्यवसाय, नौकरी, मजदूरी, चोरी, हत्या, डकैती, माफिया आदि। साधारणत: समाज में धनोपार्जन के विषम रूप को दो भाग में विभक्त कर सकते हैं। एक तो ईमानदारी या सामाजिक जो प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य होता है। दूसरा बेईमानी (असामाजिक) जो समाज में असामाजिक कार्य में लिप्त रह कर करते हैं।

1. ईमानदारी (सामाजिक) से धनोपार्जन

समाज में हर आदमी ईमानदारी से धन कमाना चाहता है। ये हर नागरिक की इच्छा होती है।नौकरी करके व्यक्ति समाज में धनोपार्जन करता है जिससे व्यक्ति का आत्मविश्वास बढ़ता है। समाज में उसे प्रतिष्ठा मिलती है। व्यवसाय और मजदूरी भी सामाजिक रूप से धनोपार्जन का अन्य एक माध्यम है जो कष्टसाध्य है। व्यक्ति के परिश्रम का पारिश्रमिक फल मिलता है जिसमें व्यक्ति आनन्द प्राप्त करता है। साधारणत: पारिश्रम का फल कभी भी पैसे के साथ तोला नहीं जा सकता है। व्यक्ति

परिश्रम का फल इसलिए लेता है कि उसे अपने पेट के साथ-साथ परिवार का भी पोषण करना है।

विवेच्य उपन्यास में भोला गाँव से पचपन किलोमीटर दूर हैयर ऑयल फैक्टरी में ईमानदारी से चौकीदारी कर रहा था। इस नौकरी से वह अपनी पारिवारिक समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता था। इसलिए भोला शहर जाता है। भोला कहता है कि – “मैं दो साल में एक लाख कमाने के लिए बम्बई जा रहा हूँ। क्योंकि मेरे ऊपर अपनी बहन के ब्याह की जिम्मेदारी है। जो दर्जा आठ तक पढ़ी है। वह और माई फैक्टरी में पैकिंग का काम करती है और फैक्टरी के क्वार्टर में ही रहती हैं।”[1]

2. बेईमानी (असामाजिक) से धनोपार्जन

चोरी, डकैती, माफ़िया और हत्या आदि असामाजिक रूप से समाज में धनोपार्जन के साधन हैं। हमारे समाज में कुछ लोग ईमानदारी से धनोपार्जन करते हैं और कुछ बेईमानी, कालाबाजारी, धोखाधड़ी, दलाली आदि करके धनोपार्जन करते हैं। ‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ उपन्यास में भोला धनोपार्जन की चाह ले कर मायानगर में प्रवेश करता है। मायानगरी ही भोला की चाह में हावी हो जाती है। इसलिए उसके अंदर की ईमानदारी बेईमानी में परिवर्तित हो जाती है। अंडरवर्ल्ड दुनिया के लिए बेईमानी ईमानदारी मानी जाती है। इसलिए अंडरवर्ल्ड की पनाह भोला के ऊपर बढ़ती जाती है। भोला अंडरवर्ल्ड का काम कर्त्तव्यपरायणता और वफादारी से करता है। इसके परिणाम स्वरूप भोला को एक ओर से कामयाबी मिल रही थी तो दूसरी ओर से अपने देश, समाज की आम जनता के लिए वह जहर फैला रहा था। शहर के कोने-कोने तक जहर की दुर्गंध फैल गयी थी।

भोला और गफ़ूर दोनों अपने धंधे का माल (नशीले पदार्थ) वितरण के लिए गये थे। गफूर अपनी जगह कसमसाते हुए बोला – “मैं बहुत थक गया हूँ। सुबह छह

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.15

बजे दहिसर नाके पर चला गया था। एक तरह से रात को सोया ही नहीं।"[1] भोला टिप्पणी करते हुए बोला – "ड्यूटी में ऐसा हो जाता है। गफूर भाई, आप बैठो। मैं दे कर आता हूँ।"[2]

जब भोला माल दे कर बाहर निकला तो गोलियों की बारिश होने लगी। भोला ने अपने को बचाने के लिए छुरे का भरपूर वार किया। हलकी चीख के साथ वह नीचे झुक गया और भोला तेज कदमों से अपनी कार की ओर बढ़ा। उसने पिछला दरवाजा खोला और थैली में छुरा व गफूर की पिस्तौल डाल दी। फिर पैकेट बटोरकर भर दिए। सहारा देकर गफूर को खड़ा किया और दूसरी तरफ चलने लगा।

गफूर कहता है कि – "अगर भोला ऐसा न करता तो शायद मेरा 'जाना' लाजिमी था। मेरी तरफ बढ़ते जॉनी को उसकी गाड़ी से कवर मिल हुआ था।"[3] इसलिए भोला मौका पाकर खुद भाग निकलने के बजाय बाँह में लगी गोली के बावजूद उसने पच्चीस लाख के पैकेट और ज़ख्मी गफूर को बचाने के लिए अपने को खतरे में डाला – यह उसकी कर्त्तव्यपरायणता और वफादारी के उजले सबूत माने गए। इससे पता चलता है कि भोला अंडरवर्ल्ड में शामिल होने के बावजूद उसके अंदर मानवीयता जिंदा है।

वर्तमान समाज में नगरों में ज्यादातर माफिया या अंडरवर्ल्ड के लोग धनोपार्जन करते हैं। नगरों में पूँजीपति वर्ग, राजनैतिक सत्ता और प्रशासन माफिया इन लोगों से इसलिए सम्पर्क रखता है कि सारे महानगरों में राजनीति कर सकें या अपना धंधा बढ़ा सकें। आज हमारे समाज में राजनैतिक सत्ता की कमजोरी के कारण माफिया नगरों में चारों ओर से व्याप्त हो गया है। माफिया नशीले पदार्थों (हैरोइन, चरस, गांजा आदि) द्वारा समाज के परिवेश को कलुषित करने के साथ-साथ आम जनता का भी शोषण करता रहता है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.55

[2] - वही - पृ.55

[3] - वही - पृ.65

वर्तमान समाज में सुपारी की बड़ी परंपरा चल रही है। जिसको खत्म करने के लिए सरकार की ओर से कई प्रयास व घोषणाएँ होती रहती हैं। लेकिन सुपारी कम होने की जगह बढ़ने लगी है। सुपारी की परम्परा साधारणत: माफिया वाले करते हैं। इन लोगों को तो राजनेता, पुलिस, पूँजीपतियों का सहारा मिलता है। इसलिए यह परम्परा भी आज तीव्र गति से बढ़ रही है। भोला और गफूर सुपारी लेकर यूनियन नेता के कुटुंब को ठिकाने लगाते हैं। उसी प्रकार सोमपूरिया सेठ की सुपारी से मुर्तज़ा नील को मार डालता है।

विवेच्य उपन्यास में नील महानगरों में अपनी योग्यता, व्यक्तित्व और खुबसूरती के साथ कुँआरेपन को बाजार में बेच कर धनोपार्जन करता है। जिससे वह सफल हो जाता है। इसके साथ-साथ नगरों की असंतुष्ट अधेड़-धनाड्य महिलाओं के लिए पुरुष वेश्या बन जाता है। वर्तमान युग की मायानगरी में अधिक धनोपार्जन की लालसा लोगों के मन में भर कर अंतिम परिणति मृत्यु तक ले जाती है।

महानगरों के समाज में नौकरी ढूँढना और मिलना कष्ट साध्य है। फिर भी नील को हजारों कोशिशें करने पर उसे नौकरी मिलती है। साधारणत: किसी को नौकरी मिलती है तो वह आनंदित हो जाता है। लेकिन नील खुश नहीं है। क्योंकि उसमें पैसे कम मिलते हैं। वह अपनी नौकरी के साथ-साथ ब्लॉसम, शिल्पा, यास्मीन, पारूल, फ्रांसीसी, स्विस आदि नगरों की अधेड़-धनाढ्य महिलाओं की शारीरिक काम वृत्ति के लिए अपनी योग्यता को बाजार में बेचता है। जिसमें वह तीन दिन में नौकरी की मासिक वेतन से भी ज्यादा कमा लेता है। इसलिए नील अपने आप को सौभाग्यशाली मानता है। क्योंकि वह काम और अर्थ दोनों पुरुषार्थों का अपने अंदर संयोजन कर लेता है।

1. परिणाम

मनुष्य समाज में अर्थ सामाजिक रूप से कमाता है लेकिन जब वह असामाजिक रूप से अर्थोपार्जन करता है तो समाज में विषम रूप की सृष्टि होती है जो मनुष्य को मृत्यु तक ले जाती है।

मनुष्य अर्थ के लालच में आ कर विभिन्न प्रकार के अपराध कर बैठता है। आज आदमी आदमी के बीच बंधुत्व, भातृ भावना, प्रेम, स्नेह, मित्रता आदि संबंध न रह कर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, द्वंद्व, कपट, लोभ आदि भावना जागृत हो रही है इससे आदमी का पतन हो रहा है।

1.1 अपराधीकरण

अपराधीकरण इसका एक सामाजिक कारण है। समय के साथ समाज का रूप बदलता गया है। आज के महानगरों में किसी-न-किसी रूप में अपराधीकरण देखने को मिलता है। आज के जटिल समाजों में अपराध और अपराधियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अपराध का कोई एक कारण नहीं माना जा सकता। विभिन्न देशों में, विभिन्न व्यक्तियों के अलग-अलग अपराधों के अलग-अलग मनोवैज्ञानिक अथवा सामाजिक या आर्थिक कारण होते हैं।

आज महानगरों में अपराधीकरण एक प्रकार का पेशा बन गया है। इसलिए नगरीय समाज में अपराधी की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है। नगरीय समाज में अपराध पनपने का मुख्य कारण अर्थ है। भोला अंडरवर्ल्ड में शामिल होकर महानगरीय परिवेश में नशीले पदार्थों से कलुषित करने के साथ-साथ नागरिक जीवन में धीरे-धीरे प्रवेश कर रहा था। इसलिए नगर की आम जनता खुद को सुरक्षित नहीं मानती थी।

साधारणत: अपराध करने का मुख्य कारण अर्थ ही है। चाहै निम्न वर्ग हो या पूँजीपति वर्ग हो। समाज में दोनों वर्ग धन के लिए अपराध करते हैं। परन्तु निम्न श्रेणी के अपराधी, निम्न आर्थिक एवं सामाजिक वर्ग के व्यक्ति होते हैं जो अधिकांशत: नहीं होते हैं। वे अपने अपराधों को छिपा नहीं पाते, पकड़े जाते हैं तथा दंड के भागी होते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में अपराधियों का एक बड़ा वर्ग वह है जो ऊपर से बहुत संभ्रांत, सज्जन और प्रतिष्ठित दिखाई देता है लेकिन धन के संचय की लालसा के कारण उसका जीवन अपराधी व्यवहारों से घिरा होता है। ऐसे अपराधियों को

श्वेतवस्त्र अपराधी कहा जाता है। तस्करी, जालसाजी, कारों की चोरी, कालाबजारी, मिलावट, नकली मुद्रा बनाना तथा अन्य राष्ट्रीय अपराधी संगठनों का संचालन करना इन अपराधियों की जीविका का आधार है। ऐसे अपराधियों की आश्रय स्थली समसामयिक भारतीय नगर ही हैं। इन अपराधियों को कोई पकड़ नहीं पाता। क्योंकि समाज में उनका विशिष्ट स्थान होता है। सदरलैण्ड के अनुसार – "ये ऐसे अपराध हैं जो अपने व्यवसाय के काल में आदर प्राप्त और उच्च सामाजिक वर्ग के व्यक्ति के द्वारा किये जाते हैं।"[1]

"माफिया के पनपने और एकछत्र सत्ताधारी बनने के लिए सबसे उपयुक्त स्थान महानगर हैं। माफिया के लिए जमीन का टुकड़ा सोने की खान-सा बहुमूल्य है। जन क्योंकि जरूरत से बेहद ज्यादा हैं, इसलिए जान कीड़े-मकोड़े-सी सस्ती है। ये महानगर देश के कुल आयकर का चालीस प्रतिशत से भी ज्यादा देता है। यहाँ वैभव की सर्वग्रासी चमक है और गरीबी का नागपाश भी उतना ही दारूण। देखते-देखते मुद्रा सम्राट बन जाने वाले सटोरियों, तिकड़मियों, तस्करों और अपराध सामंतों की मर्मस्पर्शी किंवदंतियाँ हैं, जो भूखे पेट में महत्वाकांक्षा की अतिरिक्त अग्नि जुटाती है। तभी दस हजार के लोभ में बेकार नौजवान बरसों के लिए जेल जाने की जोखिम उठा लेता है। ऐसे नेता और अफसर हैं जो भ्रष्ट होने को गर्मजोशी से तैयार हैं। सौ साल पुरानी इमारतों के लंबे साये, अँधरे कोने पुरपेच गलियाँ और कीड़ों की तरह खदबदाता जनसमूह माफिया की रमणीय, पावन लीलाभूमि...."[2] । इसलिए नगर में अपराध के साथ-साथ अपराधियों की संख्या भी बढ़ने लगी है। गफूर और भोला अपने स्वार्थ के लिए मिल मालिक की सुपारी से यूनियन नेता को ठिकाने लगाते हैं। उसी प्रकार सोमपुरिया सेठ की सुपारी से मुर्तज़ा नील को मार डालता है।

भारत में ऐसे अपराधियों की कमी नहीं है। बड़े-बड़े पूँजीपति, उच्च सरकारी पदाधिकारी, व्यवसायी तथा राजकीय पदाधिकारी सैकड़ों कानूनों का उल्लंघन करते हैं तथा दुराचार-व्यभिचार फैलाते हैं परन्तु उनकी उच्च स्थिति के कारण या

---

[1] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि – डॉ. स्वर्णलता, पृ.217 से उद्धृत

[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.159

तो कोई कार्यवाही ही नहीं होती, यदि कोई कार्यवाही शुरू भी होती है तो इनके लम्बे हाथों द्वारा वहीं समाप्त कर दी जाती है। जिससे उन्हें किसी प्रकार का दण्ड नहीं भोगना पड़ता, इसलिए हमारे समाज में अपराधियों की बढ़ती तादाद के कारण नगरों में व्यक्ति का जीवन इतना असुरक्षित तथा भयग्रस्त हो गया है कि ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा से कोई कार्य कर पाना ही कठिन हो गया है।

1.1.1 अपराधीकरण के कारण

अपराधों के कारण पर विचार करते समय यह भी देखा गया है कि छोटे और कमजोर गठनवाले व्यक्ति अधिक अपराध करते हैं और ऐसे व्यक्ति कई प्रकार की बीमारियों से ग्रसित होते हैं। बहुत-सी विशिष्ट शारीरिक ग्रंथियाँ भी अपराध से सम्बन्धित मानी गयी हैं। देखा गया है कि - अधिकतर अपराधी कई प्रकार की मानसिक कमजोरी, मिर्गी एवं मानसिक असंतुलन आदि बुराइयों से पीड़ित रहते हैं।

कई वंशानुगत शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के कारण विशेष वातावरण में अपराध-कार्य हुआ करते हैं। बहुत से व्यक्ति वंशानुगत विशेषताओं के कारण अपरिपक्व अवस्था में ही यौन संबंध दक्षता पाप्त कर लेते हैं। उनमें मानसिक स्थिरता और संवेगशीलता का तो अभाव रहता ही है, साथ ही उनमें स्नायुमंडल की अस्थिरता और मानसिक दुर्बलता भी रहती है। ऐसे व्यक्ति भी अपराधोत्पादक वातावरण में अपराधी बन जाते हैं।

अपराधों की वृद्धि में आर्थिक पद्धति का भी बहुत बड़ा योग रहता है। अधिकतर अपराधी दरिद्र परिवारों के होते हैं और अनेक प्रकार के अपराधों की संख्या आर्थिक पतन और बेकारी से बढ़ती है। पूँजीवादी पद्धति वाले समाज में अनेक अपराधों की जड़ में धन होता है।

1.1.1.1 आर्थिक कारण

सामाजिक कारणों के समान आर्थिक कारण भी अपराध के महत्वपूर्ण कारण है। भोला के गाँव की जमीन काका के द्वारा बिक जाने के बाद परिवार की आर्थिक

परिस्थिति खराब हो जाती है। इसलिए भोला दो साल में एक लाख रुपये कमाने की चाह लेकर बंबई जाता है। भोला का उद्देश्य यह था कि – "एक लाख में धूमधाम से बहन की शादी करूँगा। गाँव जाकर नहर के किनारे थोड़ी-सी जमीन खरीदूँगा, क्योंकि वहाँ सिंचाई की समस्या नहीं है। घर बनाऊँगा।"[1] भोला अपनी चाह की पूर्ति के लिए अंडरवर्ल्ड में शामिल हो जाता है।

उसे धीरे-धीरे अंडरवर्ल्ड के भाइयों के गुप्त कार्य अच्छे लगने लगते हैं। वह भी अपने को इस दुनिया में शामिल करके नशीले पदार्थों को इधर के माल को उधर और उधर के माल को इधर करते समय कड़ी नजर से सतर्कता से करता है क्योंकि ये धंधे असामाजिक हैं।

"भोला नागरीय परिवेश में नशीले जहर से देश की नई पीढ़ी को मारता था। कानून के ढाँचे में न सिर्फ घुन बनकर उसे खोखला करता था। बल्कि सरे बाजार उसे जूते-तले रौंदता भी था।"[2] इस प्रकार भोला बंबई आने के बाद कोलाबा से मालाबार हिल तक विष बेलों जैसा फैल गया था। भोला को अंडरवर्ल्ड की दुनिया में धीरे-धीरे कामयाबी मिल रही थी। महानगरों का पारम्परिक अपराध हत्या, अपहरण, आत्महत्या आदि आज के समाज में किसी-न-किसी रूप में बदल कर समाज में विद्यमान है। लेकिन आज महानगरों में हत्या, अपहरण, आत्महत्या आदि अपराध समाज में विषम रूप धारण कर रहा है।

अपराधीकरण के कारण का मुख्य कारण धन है। आज आदमी अर्थ के लालच में विभिन्न प्रकार के अपराध करने को तैयार हो जाता है। जैसे भोला, मुर्तजा, शंकूर भाई, इम्तियाज, किट्टू, बन्ने, नूर आदि नगर में हत्या, अपहरण, दलाली आदि कार्य करते हैं। इन लोगों के भीतर लालची मनोवृत्ति के कारण अधिक-से-अधिक धन एकत्रित करने की चिंता लगी रहती है। किट्टू विश्वासघात करके अंडरवर्ल्ड के माल के साथ जुम्मन को पकड़ा देता है। इससे भोला को जेल हो जाती है और इलियास भाई की मृत्यु हो जाती है। किट्टू लाड़ से थोड़ा मुस्करा

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.20
[2] - वही - पृ.145

दिया और बोला "तू सचमुच भोला है। मैं बेवकूफ हूँ, जो अपनी गर्दन खतरे में डालूँगा? इस गैंग में अब है कौन? यहाँ की सारी ताकत खत्म हो गई।"[1]

इस प्रकार बन्ने भी विश्वासघात करता है। इस विश्वासघात के कारण इम्तियाज भाई की मृत्यु हो जाती है। भोला और गफूर अपने स्वार्थ के लिए सुपारी लेकर यूनियन नेता को ठिकाने लगाते हैं।

नील अर्थ के अभाव में अपनी योग्यता और कुँवारेपन को बेचता है। उसमें वह सफल हो जाता है। वह अपनी आर्थिक परिस्थिति सुधारने के लिए नगरीय समाज में अधेड़-धनाढ्य महिलाओं के लिए पुरुष वेश्या बन जाता है। पारूल और नील के शारीरिक संबंध से पारूल गर्भवती हो जाती है। पारूल कहती है कि "एडल्डरी कानूनन अपराध है।"[2] नील कहता है कि – "फाँसी तो नहीं होगी। कुछ साल की सजा काटकर बाहर आ जाऊँगा।"[3]

इस प्रकार हम अपराधीकरण के कारण में आर्थिक परिस्थिति को देख सकते हैं।

समाज का वातावरण व्यक्ति के आचरण को बहुत अधिक प्रभावित होता है। समाज का वातावरण अगर किसी कारण से बुरा हुआ तो स्पष्ट है कि वहाँ अपराध होंगे। कुछ अपराध सिर्फ यौन संबंध अपराध हो सकते हैं। तो कुछ सिर्फ हत्या-संबंधी। कुछ अपराधी सिर्फ धन के लिए होते हैं तो कुछ अपराध सिर्फ शिशुओं तक ही सीमित रहते हैं।

साधारणतः समाज में यौन संबंध अपराध विवाह पूर्व व विवाहैत्तर संबंध भी माना जाता है। जैसे किरन और नील के संबंध और नील व कुमुद के संबंध को विवाह पूर्व अपराध माना जाता है। लेकिन पारूल, यास्मीन, शिल्पा, ब्लासम आदि महिलाओं के विवाहैतर यौन संबंध को समाज में विवाहोपरान्त अपराध माना जाता है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.227

[2] - वही - पृ.211

[3] - वही - पृ.211

भारत में दिन-प्रति-दिन बेकारी की समस्या बढ़ती जा रही है जो अपराधीकरण का मुख्य कारण बन रही है। समाज में राजनीति भी अपराध का एक कारण मानी जाती है जिसके द्वारा देश में दिन-व-दिन अपराधीकरण बढ़ता जा रहा है।

1.1.1.2 शैक्षिक संस्थाओं के विषम रूप

सामाजिक चेतना को अधिक व्यापक और समकालीन बनाने में शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा के बिना लोक जीवन परम्परागत मान्यताओं विश्वासों और मूल्यों को लिये चलता रहता है और एक तरह से उन्हें सत्य मानकर यथावत् स्वीकार करना चाहता है लेकिन शिक्षा जन मानस को देश-विदेश के परम्परागत और नये ज्ञान से संपन्न करती है उसमें यथार्थ को समझने की एक नयी चेतना और विवेक दृष्टि पैदा करती है। मूल्यांकन की समझ देती है। इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य यह होता है कि – व्यक्ति स्वयं अपने, आसपास के समाज, अपने देश और एक तरह से पूरे विश्व के संदर्भ में एक सार्थक व्यक्तित्व को निर्मित और विकसित करे।

सामान्यत: शैक्षिक संस्थाएँ विद्यार्थी के लिए अपनी शक्तियों के विकास और सुधार के लिए चेतना पूर्वक प्रयास संस्था मानी जाती है। विवेच्य उपन्यास में नील शैक्षिक संस्थाओं से प्रताड़ित किया गया है। वह पहले अपने व्यक्तित्व और ज्ञान शक्ति द्वारा डॉ. शर्मा का अनौपचारिक रूप से शोध-सहायक हो गया था। उनके दिए गए बिन्दुओं के सहारे शोध-पत्र का प्रारूप तैयार करना, संदर्भ-ग्रंथों से अपेक्षित उद्धरण ढूँढना, प्रेस कॉपी के प्रूफ देखना आदि कार्यों को सही ढंग से करता था। अत: नील एम.ए. पूरा होते ही डॉक्टर शर्मा के निर्देशन में डॉक्टरेट का रजिस्ट्रेशन करवा लेता है।

नील अपनी माँ से कहता है कि –"डॉक्टरेट होने दो माँ! यूनिवर्सिटी में घुस जाऊँ, फिर बैंड बजवाना।"[1] नील की ईमानदारी ने ही डॉ. शर्मा को मुग्ध कर दिया था। वह अल्हड़ नहीं था। संजीदा और चिंतनशील था। बहुत होनहार था। खुद उसे

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.8

और आसपास के लोगों को उससे कितनी उम्मींदें थीं। पहले सत्र का एक-तिहाई भाग खत्म होते ही वह कॉलेज के सबसे लोकप्रिय अध्यापकों में गिना जाने लगा था। स्टडी सर्किल में पढ़ा गया उसका पर्चा 'कुषाण युग की मुद्राओं का सांस्कृतिक अध्ययन' बहुत सराहा गया था। डॉ. शर्मा ने भावविभोर क्षण में कह दिया था कि – "तुम मेरे एकेडेमिक उत्तराधिकारी हो।"[1]

तभी पिता का तबादला आंडमान निकोबार हो जाने पर किरन चाचा के पास कैवलरी लाइंस के बंगले में आ गई।

आधुनिक समाज में देखा गया कि विद्यार्थी का लक्ष्य भ्रष्ट का मुख्य कारण 'प्रेम' है जो अल्हड़ यौवन का आकर्षण होता है। कहा जाता है कि – 'सब सफल पुरुष के पीछे कोई-न-कोई स्त्री का हाथ रहता है लेकिन नील, किरन के प्रेम जाल में फँस कर निकल नहीं पाता है। इसलिए वह अपने लक्ष्य से दूर हो जाता है। नील सोचता है कि –"किरन मेरे जीवन में तूफान बन कर नहीं आती तो मैं अपने सुनिश्चित पथ पर चलता रहता। संसार की जीवन-शैली कितनी जटिल और रहस्यमय है। धरती के एक कोने से एक अणु आकर दूसरे से टकराता है और सारी व्यवस्था ध्वस्त हो जाती है...।"[2] इसलिए कहा जाता है कि प्रेम में कोई जीतता है तो किसी की हार। जो जीतता वह आगे बढ़ जाता है जो हार जाता है गिर जाता है।

कर्त्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी विद्यार्थी के लिए महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। इसलिए नील अपने दोस्त गौतम से न मिल कर डॉ. शर्मा का काम करता रहता था। कलकत्ता और मैसूर विश्वविद्यालयों से दो शोध-प्रबंध आए हुए थे, जिन्हें उसने पढ़ लिया था और डॉ. शर्मा के साथ विवेचन भी कर लिया था। आज उसे दोनों पर टिप्पणियों का पहला प्रारूप लिखना था जिसे डॉ. शर्मा रात को लौट कर देखेंगे।

डॉ. शर्मा को चमक-दमकवाली, सजावटी शब्दावली पसंद थी। उसका रुझान सीधी, सरल अभिव्यक्ति पर था, पर डॉ. शर्मा को खुश करने के लिए मन को मरना

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.8
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.8,9

पड़ता था। नील को धीरे-धीरे कामयाबी मिलने लगी थी। लेकिन किरन के प्यार ने नील की आशा, ईमानदारी आदि पर कलंक लगा दिया जिससे उसे शैक्षिक संस्थाओं के विषम रूप का सामना करना पड़ा। धीरे-धीरे नील के लिए जे.एन.यू., जामिया मिलिया, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, इंडियन काउन्सिल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च आदि शैक्षिक संस्थाओं के दरवाजे बंद होते गए।

डॉ. शर्मा किरन के गर्भवती होने की बात सुनकर गुस्से से कहता है कि – "कायस्थ को बेटी देकर हमें खानदान की नाक कटवानी है?"[1] यहाँ पता चलता है कि डॉ. शिक्षित होने के बावजूद जाति प्रथा मानते हैं। इस गुस्से के कारण "डॉ. शर्मा ने प्रोफेसर लाहिड़ी से कहा है, मैं दिल्ली से उसकी जड़ें खोदकर भट्ठा डाल दूँगा और देश के किसी विश्वविद्यालय में दुबारा रोपने नहीं दूँगा।"[2]

दिल्ली की अकादमिक दुनिया में वह देखते-देखते हमदर्दी और दया का पात्र बन गया, लेकिन बाहरी तौर पर उसे सहारा देने वाला कोई नहीं था। अकादमिक सल्तनत में दिल्ली विश्वविद्यालय का विभाग लाल किला था और प्रोफेसर अध्यक्ष तख्तेताऊस पर बैठा बादशाह। पूरे देश में नौकरियों के सबसे ज्यादा अवसर तो राजधानी में ही थे और बादशाह हर कमेटी में होता था। ऐसे अकादमिक औरंगज़ेब की नाक के नीचे कौन उसकी ओर सहारे का हाथ बढ़ाता....।

जब नील ने शोध-प्रबन्ध डॉ. शर्मा को दिए तब डॉ. शर्मा कहने लगे कि – "मैं आपके निष्कर्षों से सहमत नहीं हूँ।"[3] डॉ. शर्मा ने उसके शोध-प्रबंध के पहले तीन अध्यायों की फाइल लगभग फेंक दी, " 'राज-तरंगिणी' के आधार पर इतनी बड़ी स्थापनाएँ नहीं की जा सकतीं। मूर्तियों और सिक्कों का साक्ष्य भी विश्वसनीय नहीं है। उन्हें विशेषज्ञों के पास पुनर्मूल्यांकन के लिए भेजना होगा।"[4] लेकिन किरन-प्रकरण के पहले उनकी राय बिल्कुल उलटी थी।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.10
[2] - वही - पृ.11
[3] - वही - पृ.11
[4] - वही - पृ.11

"बिना डॉक्टरेट के तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता।" गोतम बोला, "पर स्कॉलरशिप के बिना रिसर्च कैसे करोगे? फिर शर्मा कदम-कदम पर रुकावट डालेगा। मान लो, सात-आठ साल में खून के आँसू बहाते हुए पीएच.डी. हो भी गए, तो नौकरी कौन देगा? यह रास्ता या तो तुम्हैं आत्महत्या तक ले जाएगा या पागलखाने तक!"[1]

इतनी सारी घटना घटने के बाद नील सोचता है कि – "एक संभोग ने मेरे जीवन की दिशा बदल दी। विश्वमित्र जैसे कितने ही ऋषियों का ब्रह्मचर्य से स्खलन हुआ है, पर कोई अपना कैरियर बदलने के लिए तो मजबूर नहीं हुआ।"[2]

नील की आँखों में अपने रमणीय दिल्ली-जीवन की कैलेडोस्कोपी छवियाँ कौंध गई और भीतर आवेग का बबूला-सा फूटा। पर अगले ही पल डॉक्टर शर्मा का ख्याल आने के साथ उसने दाँत पीसे - नहीं, मुझे सख्ती चाहिए, मुझे तल्खी चाहिए, मुझे प्रतिशोध चाहिए। सिगरेट का कश लेते हुए उसने अखबार उठाए और पन्ने पलटते हुए उसने महानगर की जीवन-शैली को टटोलना शुरू किया। उसका विश्वास था कि समाचार-पत्र ही वह चश्मा है, जिससे शहर की गति और भाव भंगिमा देखी जा सकती है, वह दूरबीन है, जिससे कार्य-व्यापार का बारीक परीक्षण हो सकता है, वह जाल है, जिसे खींचकर नगर की आत्मा मुट्ठी में की जा सकती है।

फिर वह नौकरी के विज्ञापनों पर आ गया। अधिकतर पेशेवर लोगों के लिए न्यौता था - एम.बी.ए., इंजीनियर, आर्कीटेकट, सोफ्टवेयर प्रोफेशनल, कानूनदाँ या फिर विज्ञापन एजेंसियों के लिए चित्रकार, एकाउंट एक्जीक्यूटिव। फिर कोचिंग कक्षाओं में अलग-अलग विषयों के अध्यापक फिर सौंदर्य प्रसाधक और आंतरिक सज्जाकार। औरंगाबाद विश्वविद्यालय में इतिहास के अध्यापक की एक जगह थी, पर यह जानता था, डॉक्टर गोखले विशेषज्ञ होंगे और फौरन दिल्ली फोन मिलाकर डॉक्टर शर्मा से पूछेंगे, आपका चहैता शिष्य देश की राजधानी छोड़कर प्रदेश के छोटे-से कैम्पस में क्यों आना चाहता है?

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.11
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.12

नील पहले अच्छा पढ़ता था। इसलिए उसका राजधानी दिल्ली के किसी विश्वविद्यालय में नौकरी होनी चाहिए थी। अब वह बड़ा कैम्पस छोड़कर प्रदेश के छोटे-से कैम्पस में क्यों आएगा। यह सोच कर नील डॉ. गोखले विशेषज्ञ पर जो नौकरी निकली थी उसे आवेदन नहीं किया। डॉ. गोखले को यह पता न चले की वह शैक्षिक संस्था से निकल गया है। शायद कभी वह किसी विश्वविद्यालय में आवेदन नहीं दे पायेगा।

इस प्रकार नील शैक्षिक संस्थाओं से प्रताड़ित हो कर कुछ दिनों तक निरूद्देश्य भटकता रहा। अंत में उसने निश्चिय लिया कि –“वह अपना शोध-कार्य क्यों न चालू रक्खे? दो साल बाद अध्यक्षपद से डॉक्टर शर्मा का रोटेशन खत्म हो जाएगा। वरिष्ठता के अनुसार डॉ. अंजली शुक्ला की बारी आएगी। वह उनसे अपना शोध-निर्देशक बनने की प्रार्थना करेगा। कहैगा, मुझे दिल्ली में अध्यापकी नहीं चाहिए, सिर्फ डॉक्टरेट चाहिए। हो सकता है, डॉक्टर शर्मा के डर से डॉ. शुक्ला ऐसा साहस न कर पाएँ। पर वे किसी और विश्वविद्यालय में उसका रजिस्ट्रेशन करवाने में मदद कर सकती है। उनके साथ उसके संबंध शुरू से मृदु रहे हैं। चिरकुमारी आकर्षक युवक के सामने थोड़ी पिघल जाती है।”[1] नील के हजारों कोशिश करने के बावजूद उसे कहीं पीएच.डी. का रजिस्ट्रेशन नहीं मिलता है।

विश्वविद्यालय विद्यार्थी को केवल सभी प्रकार ज्ञान तथा नैपुण्य प्रदान करना है जो उसके विशेष विभागों में प्राप्त है तथा आगे की प्रगति के लिए तैयार करना होता है। यह मानना पड़ेगा कि हमारे देश में ऐसी संस्थाएँ नहीं जो निश्चित और विशेष रूप से इन सब लक्ष्यों की पूर्ति करें।

शिक्षा विद्यार्थी का भविष्य बनाने के साथ-साथ लक्ष्य को भी पूरा करती है। इसलिए विद्यार्थी शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षा अर्जन करते हैं। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी अपनी चारित्रिक उत्कृष्टता और चेतना शक्ति का विकास करता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी अपने प्रतिपोषण के साथ-साथ परिवार

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.47

का भी पोषण करना चाहता है। विद्यार्थी का लक्ष्य ही उसे सफलता को शिखर तक पहुँचाता है। शिक्षा का सफल ज्ञान अर्जन ही विद्यार्थी के सामने कई रास्ते खोल देता है जहाँ वह अपने लिए सही मार्ग चुन लेता है। हर कोई विद्यार्थी का लक्ष्य अलग-अलग होता है। इसलिए विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार उसी दिशा की ओर गति करता है जहाँ वह अपना कार्य क्षेत्र बना सके। “इसलिए नील अपने लक्ष्य के चलते आई.ए.एस. की लिखित परीक्षा में क्वालिफाई करने के बावजूद इंटरव्यू के लिए नहीं जाता। उसे अध्यापन और सुकून पसंद था। सरकारी अफ़सर की प्रभुता और तनाव नहीं।”[1]

वर्तमान शिक्षा को “साधारण भाषा में जीविकोपार्जन की शिक्षा कहते हैं। परन्तु वास्तव में यह है मनुष्य का ‘स्टेण्डर्ड ऑफ लाइफ’ ऊँचा करने वाली शिक्षा। ‘स्टेण्डर्ड ऑफ लाइफ’ ही दूसरा नाम है कामनाओं में वृद्धि करना।”[2] विश्वविद्यालय की शिक्षा विद्यार्थी का लक्ष्य पूरा करने में मदद् करती है। आज की शिक्षा-पद्धति विद्यार्थी को अगर भौतिक सुख के साधनों को जुटाने का मार्ग दिखाने के साथ-साथ उसको वास्तविक आनंद प्राप्त करने में मदद करती है। इसलिए शिक्षा का मुख्य लक्ष्य या उद्देश्य विद्यार्थी का ज्ञान और चेतना शक्ति का विकास करना होता है।

आज की शिक्षा व्यक्ति को जीवन-संघर्ष के लिए तैयार करने के साथ-साथ मेहनती और कर्तव्यपरायणता का पालन करना सिखाती है। यह शिक्षा का वास्तविक रूप है। इससे विद्यार्थी बड़े-बड़े कार्य-क्षेत्र में सफलता अर्जन करता है। वह समाज व देश का कल्याण कर सकता है। आधुनिक युग में शैक्षिक संस्थाओं का विषम रूप ही विद्यार्थी के जीवन में एक प्रकार दरार (खाई) सृष्टि करती है। इसलिए विद्यार्थी शिक्षा और शैक्षिक संस्थाओं से दूर भागना चाहता है। अत: विद्यार्थी के शिक्षा अर्जन में बाधा उत्पन्न होती है।

अत: नील बम्बई जाकर पुरुष-वेश्या बन जाता है और अंत में मृत्यु को प्राप्त होता है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.8
[2] मृगतृष्णा - गुरुदत्त – पृ. 127

1.1.1.3 विषम पारिवारिक स्थितियाँ

परिवार का समाज में सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि परिवार आदिम युग में अपने आप में पूर्ण सामाजिक इकाई था। जो धीरे-धीरे विशेष उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त, छोटे आकार का एक सामजिक संगठन बन गया। परिवार एक शाश्वत व स्थायी समूह है जो न केवल सामाजिक जीवन में आधारभूत स्थिति रखता है अपितु सार्वभोम भी है। परिवार ही व्यक्ति को सामाजिकता में प्रशिक्षित करता है। भारतीय सामाजिक जीवन संरचना आरंभ ही से परिवार के महत्व को निर्विवाद स्वीकृति देता चला है। परिवार में आर्थिक परिस्थिति को सबसे प्रमुख कारण माना जाता है। इसलिए लोग गाँव छोड़ शहर जाते हैं। लोगों का जीवन समाज की आर्थिक क्रान्ति से जुड़ा हुआ है।

वर्तमान नगरों में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से भारतीय परिवार में पारिवारिक स्थितियाँ विषम रूप धारण कर रही हैं। परिवार में आर्थिक स्थिति को महत्वपूर्ण माना जाता है। उसके साथ-साथ विवाह पूर्व यौन संबंध, विवाहैतर यौन संबंध, पारिवारिक संबंधों का टकराव आदि परिवार में विषम पारिवारिक स्थितियों की सृष्टि करती हैं।

1.1.1.4 विवाहपूर्व यौन संबंध

सामान्यत: यौवन अवस्था में स्त्री-पुरुष दोनों ओर आकर्षण होते हैं। नील को अपने कुँआरेपन पर गर्व था। उसे पता था कि –"नारी जाति का बड़ा वर्ग आमतौर से उसके शरीर में आक्रमक आकर्षण पाता था। वह गोरे रंग और गठीले बदन का ऊँचा, स्वस्थ युवक था। नाक-नक्श तीखे, तराशे। आँखें गहरी काली, लम्बे घने बाल, जो उसकी आभा में कवि सुलभ कोमलता जोड़ देते थे।"[1]

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.8

इसलिए नील को देखते ही किरन के अल्हड़ यौवन की लगाम हाथों से छूट गई थी। किरन कहने लगी कि – "आप क्यों मुझसे छिटकते रहते हैं और आप को देखते ही मेरे तन-मन में फूरहरी-सी उठने लगती है।"[1]

उसकी ओर तिरछी चितवन से देखते हुए किरन ने निचला होठ दाँतों तले दबा लिया। "तुम एक नजर उठाकर मुझे देखो" किरन के स्वर में कामोद्दीपन का तनाव था। नील ने आदेश का पालन किया।

किरन और नील के शारीरिक संपर्क के बाद डॉ. शर्मा के परिवार में पारिवारिक परिस्थिति डगमगा जाती है। यह पारिवारिक समस्या विषम रूप तब धारण करती है जब किरन गर्भवती हो जाती है। किरन विवाहपूर्व गर्भवती बनती है जो समाज में असामाजिक परिस्थिति की सृष्टि करती है। इसलिए डॉ. शर्मा को समाज में शर्मिंदा होना पड़ता है।

इसी प्रकार कुमुद विवाह से पूर्व यौन संबंध नील से रखती है जो समाज में स्वीकृत नहीं है।

1.1.1.5 विवाहैत्तर यौन संबंध

विवाह के बाद स्त्री पति होने के बावजूद अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए दूसरे पुरुष से शारीरिक सम्पर्क रखती है। उसे विवाहैतर यौन संबंध कहते हैं। विवेच्य उपन्यास में महिलाएँ अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए परिवार में भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों की सृष्टि करती हैं।

शिल्पा

शिल्पा एक भरीपूरी गृहस्थी से दीप्त अधेड़ स्त्री है जो शादी के बाद अपने पति की जटिल कामवासनाओं से तृप्त नहीं है। इसलिए वह दूसरे पुरुष से अपनी शारीरिक भूख की तृप्ति करती है। शिल्पा ऊपर से सदाचारी और पतिव्रता बनती है लेकिन आंतरिक रूप से दूसरे संपर्क रखती है। शिल्पा एक ऐसी स्त्री थी जो अपने

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.9

पति और बच्चे के बारे में नहीं सोचती थी। वह अपने शारीरिक यौन की तृष्टि करनी चाहती थी। शिल्पा अपनी कामवासना को महत्वपूर्ण मानती थी, पति और बच्चे को नहीं।

पारूल

पारूल सोमपुरिया सेठ की सबसे बड़ी बेटी है और शाहू घराने की बहू भी है। यहाँ पूँजीपति वर्ग और निम्नवर्ग की पारिवारिक परिस्थिति समान रूप से समाज में उभर कर सामने आती है। साधारणत: माना जाता है कि परिवार में लड़कियों को एक मात्र भरोसा माँ के ऊपर होता है। जब पारूल की माँ का देहान्त हो जाता है तो पारूल की जीवन शैली बदल जाती है। पारूल की आगे की पढ़ाई रुक जाती है। पारूल के पिताजी महीनों शैयाग्रस्त रहै और इस आघात से कभी उबर नहीं पाए।

इन सारी पारिवारिक परिस्थितियों और पिताजी की 'अंतिम अभिलाषा' को मद्दे नजर रखते हुए पारूल अनिच्छा के बावजूद जयंत से शादी करती है। पुरुष प्रधान समाज में चाहै नारी कितना महान त्याग करे फिर भी पुरुष नारी के प्रति निर्दय ही होता है। इस समाज में नारी के अधिकार को पुरुषों ने छीन लिया है। नारी शिक्षित होने के बावजूद पुरुष प्रधान समाज में शोषित हो रही है।

पारूल अपने प्रेमी नील से अपनी कहानी सुनाती हुई कहती है कि – " मैंने तन-मन की कितनी यंत्रणा सही हैं, मैं तुम्हें शब्दों में बता नहीं पाऊँगी। मैं जैसे जलते रेगिस्तान में जी रही थी... मेरा तीन-चौथाई हिस्सा मुर्दा था... आधी रात को यकायक मेरी नींद टूट जाती, तो बाहर लहरों की गरज के साथ मैं सोचती, मैं क्यों जिन्दा हूँ? मेरे जीवन का अर्थ क्या है?"[1]

"तुम शायद न मानो, पर विश्वास करो, मैं ईश्वर से झूठ बोल सकती हूँ, पर तुमसे नहीं। प्रेम क्या होता है, तुमसे मिलने से पहले मैं नहीं जानती थी। हमारे परिवार में लड़की को यही सिखाया जाता है कि प्रेम ब्याह के बाद करते हैं और वह भी सिर्फ पति से। अहमदाबाद में एक सहपाठी पर मेरा क्रश था, पर दूर-दूर से उसे

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.137

देखकर ही उतावली होती रही। फिर कलेजे पर पत्थर बाँधकर जयंत से ब्याह कर लिया। फिर यातना के दूसरे दौर की शुरूआत हुई...” आँसू सूख गया था। अब नमी की जगह पारूल की आँखों में अजीब-सी सख्ती आ गई, “जयंत को शीघ्रपतन की बीमारी निकली। ...मन को तो सूना रहना ही था, तन भी देखते-देखते कुम्हला गया। पिता से कहा, मुझे मैके में रहने दो, तो वे बुढ़ापे में बेटी का दु:ख देख न पाने का रोना रोने लगे... और कि सोमपुरिया घराने में ब्याहता बेटी ने कभी ससुराल नहीं छोड़ी। मैंने कहा, ठीक है। तुम्हारी बेटी ससुराल नहीं छोड़ेगी, अपने प्राण छोड़ देगी...”[1]

यास्मीन

यास्मीन भरीपूरी गृहस्थी से दीप्त अधेड़ स्त्री है। जो शादी के बाद अपनी कामवासना से तृप्ति नहीं है। इसलिए वह बाजारी पुरुष से शारीरिक भूख को मिटाना चाहती है। ब्लॉसम के विपरीत आज की इस प्रेमाकांक्षिणी की थोड़ा गहन थी। इसलिए नील ने श्वासपराग चुंबन और हंसिनीसीत्कार आसन का सहारा लेना पड़ा था तभी जा कर यास्मीन की यौन इच्छा चरम सीमा की उपलब्धि हुई।

ब्लॉसम

ब्लॉसम एक विधवा औरत है। अपने पति की मृत्यु के बाद वह काम वासना से तृप्त नहीं थी। इसलिए वह बाजारी पुरुष से शारीरिक संपर्क रखती है। ब्लॉसम और नील की शारीरिक संपर्क के बाद ब्लॉसम सौ के कुछ को गिनते हुए कहती है कि “आठ सौ हैं।” वैसे मैं पाँच सौ देती हूँ और जगह भी उसी की होती है। पर तुम विशेष हो। इस प्रकार उपन्यास की स्त्रियाँ अपने शारीरिक यौन का महत्व मानते थे। ये सब धनी घराने की स्त्रियाँ हैं, जो यौन संबंध महत्वपूर्ण मानते हैं।

भोला

भोला मथुरा का हैयर ऑयल फैक्टरी का ईमानदार चौकीदार था। गांव की जमीन काका द्वारा बेचे जाने के बाद भोला अपने परिवार का पोषण नहीं कर पाता।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.137

इसलिए भोला कहता है कि – "दरअसल हमारे काका ने हमारे साथ अन्याय किया है। जिस आदमी का अपना खून दगा दे जाए, उसकी जिंदगानी का कोई मतलब है"[1]

इसलिए भोला दो साल में एक लाख रुपये कमाने के लिए बंबई जा रहा है। क्योंकि इस पैसे से वह अपनी बहन चंदा की शादी करेगा और गाँव में नगर के किनारे थोड़ी-सी जमीन खरीदेगा, क्योंकि वहाँ सिंचाई की समस्या नहीं है।

भोला अपनी आर्थिक परिस्थिति को दूर करने के लिए शहर में अंडरवर्ल्ड में शामिल हो जाता है। उसकी पारिवारिक परिस्थिति सुदृढ़ बन जाती है लेकिन वह ऐसे जाल में फँस जाता है जिससे निकल नहीं पाता है और मारा जाता है।

नील

नील इस उपन्यास का मुख्य पात्र है जो विद्यार्थी है। अपनी आशा को पूरा करने के लिए वह डॉ. शर्मा के पास पीएच.डी. का रजिस्ट्रेशन करवा लेता है। किरन का प्यार उसे लक्ष्य भ्रष्ट कर देता है। इस त्रासदपूर्ण समस्या को जब वह अपनी माँ से कहता है तो उसकी माँ गुस्से से कहती है कि – "यह सुनने से पहले मैं मर क्यों न गई?... इसी दिन के लिए पेट काट-काट कर तुझे पाला था... सोचा था, खानदान का नाम रोशन करेगा। तूने तो मुँह पर ऐसी कालिख पोत दी कि बाहर कहीं दिखा नहीं सकती....।"[2]

शैक्षिक संस्थाओं के विषम रूप ने नील की आर्थिक परिस्थिति को विषम रूप प्रदान किया है। इसलिए नील पैसे के लिए मायानगरी में अधेड़-धनाड्य महिलाओं के लिए पुरुष वेश्या (जिगोलो) बन जाता है।

लेखक सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में यह समस्या ऊभर कर सामने आती है कि स्त्रियाँ एक पुरुष से अपनी काम वासना को तृप्त नहीं

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.20
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.12

कर पाती इसलिए समाज में जिगोलो का सहारा लेना पड़ता है। इससे पारिवारिक परिस्थिति में विषम रूप दिखाई देता है।

श्रीमती दस्तूर

श्रीमती दस्तूर एक अच्छी औरत थी, जिसका वैवाहिक जीवन बहुत सुखी था। जब वह उन्नीस साल की थी तब फ़ीरोज से मिली थी। वह उनकी जिंदगी में आया अकेला पुरुष था। फ़ीरोज की मृत्यु के बाद श्रीमती दस्तूर की शरीरिक व मानसिक दोनों प्रकार की परिस्थिति सृष्टि होती है। इसलिए श्रीमती दस्तूर कहती हैं कि – "नील, तुम अंदाज लगा सकते हो, तेतालिस साल के साथ के बाद अचानक अकेले हो जाना कितना यंत्रणादायक हो सकता है... एक वर्ष तो मुझे फ़ीरोज की नामौजूदगी को स्वीकार में लग गया।"[1] फिर मैं मेहरू के पास ओटावा चली गई, पर मन लगा नहीं। तीन महीने में वापस आ गई। फिर अकेली जिंदगी का दूसरा दौर हुआ।

श्रीमती दस्तूर अपने अकेलेपन को बांटने के लिए एक साथी की तलाश में थी। क्योंकि अकेलेपन से मानसिक द्वंद्व अधिक बढ़ जाता था। इसलिए वह नील को अपने यहाँ नौकरी के साथ-साथ रहने-खाने की व्यवस्था कर दी। केन्द्रिय सरकार की गज़टिड छुटियों सहित सप्ताह में एक दिन की और वर्ष में एक महीने की छुट्टी। तीन महीने का प्रोबेशन। उसके कपड़ों की धुलाई और 'रीजनेबिल' फोन घरेलू खर्च में शामिल होंगे। इस प्रकार सुविधा पाने के बावजूद नील धनोपार्जन के लिए चुपके-चुपके धनी परिवार की स्त्रियों से अपना शारीरिक संबंध रखता था।

नील को नौकरी मिलने के बाद वह श्रीमती दस्तूर के घर में नई जिंदगी शुरू किया। उसे यह जिंदगी सूनी और उदास लगनी लगी थी। इसलिए नील बिस्तर पर बैठ कर सोच रहा था कि – "अपने सहचर से श्रीमती दस्तूर की क्या अपेक्षाएँ होंगी? उनका एकांत बाँटना। उनके अकेलेपन को भरसक कम करते हुए बर्दाश्त के लायक बनाना। अपने दु:ख का सामना करने के लिए उनका मनोबल बढ़ाना। अपने

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.35

दायित्व का निर्वाह करते हुए उसे किस तरह की सतर्कता बरतनी चाहिए? उनकी मन:स्थिति का ध्यान रखना। जीवन, प्रेम, विवाह आदि से संबंधित उनकी शंकाएँ होंगी। उनके संतोष दायक जवाब दे पाना। शांति की तलाश में अब वे धर्म की ओर मुड़ी हैं, इससे स्वीकार योग्य बनाना। कभी वे सिर्फ़ बोलना चाहैंगी, तो उन्हैं सही प्रतिक्रिया के साथ सुनना। कभी वे सिर्फ सुनना चाहैंगी तो धीरज बढ़ाने वाली वाग्धारा संचालित करना...''[1]

1.1.1.6 सामाजिक दबाव

सामाजिक जीवन व्यवस्था के लिए समाज ही साध्य होता है। सामुदायिक जीवन में मनुष्य के विचार व्यवहार अनंत काल से विकसित समाज में संचित विचार-व्यवहार का प्रतिफलन करते हैं। जार्ज सिमल के अनुसार –समाज उन व्यक्तियों का समूह है जो अंतर व्यवहार द्वारा सम्बन्धित है। मनुष्य समाज का ही एक अंग है। सामाजिक प्राणी होने के नाते उसकी आवश्यकताएँ होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे असंख्य लोगों के सम्पर्क में आना होता है। आज के समाज में अनेक शक्तियाँ हैं जो व्यक्ति के ऊपर हावी हो कर उसे निश्चित दिशा में मोड़ देती हैं।

वर्तमान काल के समाज में जीने के लिए सामाजिक संबंधों को सही रखना पड़ता है। इसमें थोड़ी-सी भी गड़बड़ होती है तो समाज में सिर ऊपर करके चलना मुश्किल हो जाता है। इस उपन्यास में डॉ. शर्मा कहते हैं कि – ''कायस्थ को बेटी देकर हमें खानदान की नाक कटवानी है?''[2] लेकिन डॉ. शर्मा मजबूर थे क्योंकि उनकी बेटी किरन कायस्थ परिवार के लड़के नील से प्रेम करती थी। डॉ. शर्मा शिक्षित होने के बावजूद जातिप्रथा को मानते हैं। समाज में जातिप्रथा परम्परा से चली आ रही है। इसको मिटाने के लिए कई प्रयास किये गये हैं लेकिन मिटने की जगह समाज में ज्यादा फैल रही है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.38
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.10

कुमुद पहले प्रेम भरी बातों से नील को प्रेम जाल में फँसाती है। जब उसकी काम वासना तृप्त हो जाती है तो वह कहती है कि –"यकायक गुमसुम हो जाने की उनकी आदत उसके लिए एक कसक थी। दूसरी थी इस रिश्ते को अँधरे में रखने का दबाव।"[1]

"कही मेहताब को पता न चल जाए।"[2] हर तीसरे दिन वे दुहरा देती। "तुम्हैं किस बात का डर है?"[3] पहली बार यह विषय उठने पर उसने कहा- "तुम तो उनकी मुलाजिम नहीं।"[4]

"मैं जानती हूँ, उसे बुरा लगेगा। उसकी नैतिकता को ठेस पहुँचेगी।"[5] "हम दोनों वयस्क हैं और अकेले।"[6]

"लेकिन मैं तुमसे उसकी मित्र की हैसियत से मिला हूँ। वह मुझे गलत समझेगी।"[7] "मैं दोष अपने ऊपर ले लूँगा। तुमने मेरे साथ बलात्कार तो नहीं किया है।"[8] कुमुद के मुँह पर मुस्कान नहीं आई, "वह तुमसे नहीं पूछेगी। तुम्हारी नहीं सुनेगी।"[9]

कुमुद को ये रिश्ता शादी के बाद असामाजिक लगता है। इसलिए वह नील से कहती है कि –" ऐसा अचानक नहीं है। मैं अपने अकेलेपन से, अंधेरे के रिश्तों से थक गई थी।"[10] इसलिए शादी करने को बाध्य थी। इस शादी के बाद कुमुद नील से मिलने डरती थी। लेकिन सामने नील आ जाता है तो वह अपना सिर उसके कंधे पर टिकाए हुए कहने लगती कि –"मैं तुम्हारा सामना करने की हिम्मत नहीं जुटा पाई।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.62
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.63
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.63
[4] - वही - पृ.63
[5] - वही - पृ.63
[6] - वही - पृ.63
[7] - वही - पृ.63
[8] - वही - पृ.63
[9] - वही - पृ.63
[10] - वही - पृ.88

....अपने को ऐसा कमजोर मैंने कभी नहीं पाया।"[1] इससे पता चलता है कि कुमुद समाज के नियम का उल्लंघन नहीं करना चाहती है। शादी के बाद दूसरे पुरुष के साथ शारीरिक संपर्क असामाजिक होता है। वह समाज से डरती हुई कहती है कि – "उनके साथ के रिश्ते की प्रवृत्ति बिलकुल दूसरी रही है।"[2] फिर चिर-परिचित चंचल चंचल मुस्कान आ गई, "कुछ पुरुष सिर्फ प्रेमी हो सकते हैं और कुछ सिर्फ पति।"[3] फिर पहले जैसी संजीदगी आ गई, "उन्हैं सिर्फ पत्नी की तलाश थी और मैं जानती हूँ, वे आदर्श पति साबित होंगे।"[4] दो पल ठिठकर जोड़ा, "अब जो आशंका तुम्हारे मन में है, उसे भी जुबान पर लाकर साफ कर दूँ। कल सुहागरात में मैं पहली बार आत्मसमर्पण करूँगी। ...वैसे भी आदर्श पति को शादी से पहले होने वाली जीवन-संगीनी को गर्दन से नीचे नहीं छूना चाहिए।"[5]

कोई भी रिश्ता जितनी जल्दी जुड़ता है उतनी जल्दी ही टूटता है। जैसे नील और नैन का संबंध। नैन, नील से प्रेम करती है। लेकिन जब गर्भवती होने की बात सुनी तो गुस्से से कहने लगी कि – "जब तुम मुझसे प्रेम का नाटक कर रहै थे, तभी पारूल को गर्भवती भी बना रहै थे।"[6] "प्रेम की ऐसी परिभाषा मैंने आज तक नहीं सुनी... कि एक भोली-भाली लड़की के साथ ब्याह की तैयारी करो और दूसरी ब्याहता औरत के साथ सोया करो...।"[7]

जब स्त्री-पुरुष की निगाह मिलने लगती है तो एक-दूसरे के अंदर की भावना कहने लगती है। ऐसा लगता है कि – पहले कभी एक-दूसरे को जानते हैं लेकिन अंजान जैसा लगता है। इस प्रकार "नील की निगाह पारूल से मिल जाती है तो उनकी मोनालिसा मुस्कान में एक और अर्थ कसमसा रहा था – व्यग्र उदासी का। यह स्त्री के अंदर कहीं बहुत अकेली और व्यथित है।"[8] किसी विवाहिता स्त्री का पति

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.88
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.17
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.89
[4] - वही - पृ.89
[5] - वही - पृ.89
[6] - वही - पृ.213
[7] - वही - पृ.213
[8] - वही - पृ.105

पति रहते हुए दूसरे पुरुष के साथ संबंध को समाज में असामाजिक माना जाता है। लेकिन विवेच्य उपन्यास में पारूल विवाहैतर संबंध नील से रखती है क्योंकि नील का व्यक्तित्व पारूल के मन को छूता है।

"अकेली, मजबूर लड़की, जो दुनिया में अपनी जगह बनाने की कोशिश कर रही है।"[1] पुरुष प्रधन समाज में नारी का स्थान इतना कुचला हुआ है कि वह कितनी भी ऊपर उठने की कोशिश करे, उसे पुरुष प्रधान समाज उठने नहीं देता है।

पारूल और नील का अँधरे का रिश्ता तब समाज में गिड़गिड़ाता है जब पारूल गर्भवती हो जाती है। पारूल के गर्भवती होने के कारण जयंत और नितिन की स्थिति शर्मिंदगी से दग्ध होने लगती है।" अँधेरे का रिश्ता अपनी 'मर्यादा' छोड़ देने के बाद किस तरह ज्वलनशील हो रहा था..."[2] जो मर्यादा सोमपुरिया सेठ की समाज में थी, आज वह मिट्टी में मिल गई। पारूल और नील का संबंध ही समाज में असामाजिक था। इसलिए जयंत और नितिन को शर्मिंदा होना पड़ता है। पारूल कहती है कि – "उन्हें दिखाई नहीं दे रहा है कि नितिन व जयंत का जीना हराम हो गया है?"[3] "और मेरा जीना कब से हराम है? उस पर किसी की नजर क्यों नहीं जाती?"[4] पारूल की आँखें याचना एवं सहारे के भाव से उस पर ठहर गयी, "तुम्हारी भी नहीं?"[5]

पारूल और नील के रिश्ते को समाज स्वीकार नहीं करता है। फिर भी पारूल कहती है कि – "मुझे यह बच्चा चाहिए।"[6] "मैं भावात्मक रूप से तुम्हारी पत्नी हूँ।"[7] "इस देश का कानून ऐसा रिश्ता नहीं मानता।" "मैं मानती हूँ।"[8] फिर भी भी पारूल बच्चे को जन्म देना चाहती है। समाज में पारूल किसी दूसरे की पत्नी है। किन्तु नील के बच्चे को जन्म देना चाहती है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.108
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.210
[3] - वही - पृ.210
[4] - वही - पृ.210
[5] - वही - पृ.210
[6] - वही - पृ.210
[7] - वही - पृ.210
[8] - वही - पृ.210

नील, पारूल से कहता है कि –"कैसी बेतुकी बातें कर रही हो।"[1] उसने उफान पर काबू पाने की कोशिश की, देखो, समाज तुम पर बहुत कीचड़ उछालेगा।"

"मुझे परवाह नहीं।"

"जयंत और नितिन बाहर मुँह नहीं दिखा पाँएगे।"

"मेरी बला से..."

"तुम्हारी बेटी क्या सोचेगी?"

"मेरी अपनी भी जिंदगी है।"

"तुम्हारे पिता पर क्या बीतेगी?"

"वे कल मरतें हों, तो आज मर जाएँ.... उन्हीं की वजह से तो मेरा यह हाल हुआ।"

"एडल्टरी कानूनन अपराध है।"

"फाँसी तो नहीं होगी। कुछ साल की सजा काटकर बाहर आ जाऊँगी।"[2]

विवाह के बाद स्त्री का अपनी ससुराल में रहना पारम्परिक रीति है। लेकिन पारूल मैके में रहना चाहती है क्योंकि विवाह के बाद स्त्री चाहती है कि पुरुष उसे मानसिक, शारीरिक रूप से खुश रखे। जब से जयंत के शीघ्रपतन की बिमारी निकली। ".....मन को तो सूना रहना ही था, तन भी देखते-देखते कुम्हला गया।"[3] इसलिए पारूल ने पिता से कहा कि – "मुझे मैके में रहने दे। तो वे बुढ़ापे में बेटी का दु:ख देख न पाने का रोना राने लगे... और कि सोमपुरिया घराने में ब्याहता बेटी ने कभी ससुराल नहीं छोड़ी।"[4]

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.211
[2] - वही - पृ.211
[3] - वही - पृ.137
[4] - वही - पृ.137

इससे पता चलता है कि पूँजीपति वर्ग भी सामाजिक दबाव से डरता है। आज समाज जटिल-से-जटिल बन जा रहा है। हर किसी को समाज का डर रहता है। जैसे शहनाज धीमे स्वर में कहती है कि – "नील, अगर मुझे सोसायटी का डर नहीं होता, तो मैं तुम्हें अपने फ्लैट में रख लेती। कोई नहीं समझेगा कि हमारी दोस्ती की किस्म क्या है।"[1]

मनुष्य समाज बनाता है उसको सही रूप गति के लिए कुछ नियम भी बनाता है। सब कुछ मनुष्य ही करता है लेकिन सामाजिक ढाँचा बनाने के लिए समाज के नियम का पालन करना पड़ता है। जो इस नियम का उल्लंघन करता है उसे दंड अवश्य मिलना चाहिए चाहै उसमें कितने भी अच्छे गुण क्यों न हों, फिर भी दंड मिलना चाहिए।

2. अपराध के विभिन्न रूप

हमारे समाज में अपराध के कई रूप सामने आते हैं। जैसे मारपीट, हत्या, अपहरण, बलात्कार, डकैती, चोरी, कालाबाजारी, लूटपाट, आत्महत्या, शोषण, वेश्यावृत्ति, माफिया, दलाली आदि। वर्तमान समाज में अपराध एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

आज के समसामयिक भारतीय नगरों में होने वाले अपराधों में हत्या तथा बलात्कार से लेकर चोरी, डकैती, मारपीट, अपहरण तथा सामान्य अपराध जैसी सभी घटनाएँ सम्मिलित हैं। ये अपराध परम्परा से चले आ रहै हैं।

हमारे समाज में अपराध एक प्रकार का विकार है। जो सामाजिक, आर्थिक, जैवकीय, मनोवैज्ञानिक दशाओं की अंत: क्रिया का परिणाम है। आजकल हमारे समाज में माफिया का भयंकर रूप सामने आ रहा है। जो समाज में मादक द्रव्यों का व्यापार, हथियारों की तस्करी, जघन्य हत्याएँ, फिरौती के लिए अपहरण, शहरी संपत्ति को जबरन हथियाना और बेचना आदि असामाजिक कार्य समाज में करते रहते हैं।

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.150

महानगरों से आधी रात के बाद तक सुदुर उपनगरों को जाने वाली लोकल गाड़ियाँ हैं, देश के सब प्रमुख नगरों को जोड़ने वाली रेल सेवाएँ हैं। अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा और बंदरगाह हैं, लंबा सागर-तट है। जिसकी निगाह बंदी मुमकिन नहीं। इसलिए माफियों के पनपने और एकछत्र सत्ताधारी बनने के लिए सबसे उपयुक्त स्थान महानगर हो गया है जहाँ से कई प्रकार का अपराध किया जा सकता है।

2.1 माफिया

महानगरों के सुपारी युग में जीना मानव समाज की नियति बन चुकी है। इस समाज में बदलते परिदृश्य ने लूट-खसोट, जातिवाद, स्वार्थपरता, हत्याकांड, माफिया, अंडरवर्ल्ड आदि को जन्म दिया है। पहले समाज में इसकी गति मन्थर थी अब वह तीव्र गति से समाज को नष्ट करने के साथ-साथ परिवेश को भी कलुषित कर रही है।

हर समाज में विभिन्न प्रकार के अपराध होते रहते हैं। इन में से माफिया एक गंभीर समस्या बन गयी है। माफिया का अर्थ है कुछ रुपयों के एवज में किसी की भी हत्या की सुपारी देना। इससे पता चलता है कि जो सुपारी लेता है उसको कुछ भी मालूम नहीं रहता है।उसे पैसे के लिए अपना काम करना है। ऐसे ही हर समाज में बहुत लोग मिलते हैं जो रुपयों के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं।

महानगरों में पूँजीपति, नेता अपना रिश्ता माफिया-तंत्र से रखते हैं। क्योंकि पूँजीपति वर्ग अपने शत्रु के लिए माफिया का अस्त्र रूप में प्रयोग करता है। भारत के महानगरों में ये पेशा ज्यादा बढ़ रहा है। हमारे समाज में बेकारी की समस्या के कारण या आर्थिक परिस्थिति के कारण कोई भी आदमी अपराधी, चोर, डाकू और माफिया बनने को तैयार है। विवेच्य उपन्यास में भोला आर्थिक परिस्थिति के कारण बंबई जैसी महानगरी में आ कर अंडर वर्ल्ड या माफिया में शामिल हो जाता है। यदि कोई आदमी ऐसा बनता है तो उसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और

धार्मिक कारण का हाथ रहता है। इस उपन्यास में भोला बंबई जैसे महानगर को देखते हुए कहता है कि – “जो शहर रोजी दे दे , वह महान ही हो सकता है।”[1]

कोई माफिया या अंडरवर्ल्ड में शामिल होता है तो उसके संपूर्ण परिचय का संग्रह करते हैं। क्योंकि वह कभी इस पेशे से न निकल पाये। माफिया की दुनिया में कोई विश्वासघात करता है तो इनकी दुनिया में एक ही सजा है ‘मौत’।

किट्टू और बन्ने दोनों के विश्वासघात से इलियास भाई और इम्तियाज भाई की मौत हो गयी और भोला को कई साल जेल हो गयी। इसलिए किट्टू और बन्ने का हाथ पैर काट कर भोला किट्टू का गला काट देता है।

पूँजीपति वर्ग अपने स्वार्थ और शत्रु के लिए माफिया को व्यवस्था के रूप में प्रयोग करता है। नवीन सोमपुरिया सेठ ने सुपारी देकर माफिया मुर्तजा से नील को मरवा दिया। नील के कातिल पुर्तजा से भोला गुस्से में कहता है कि – “मुर्तजा तुमने मेरे साथ दगा दिया... वो मेरा भाई था... दुनिया में मेरा अकेला दोस्त था... परदेश में मेरा सहारा था...” लम्बी-लम्बी साँस लेते हुए भोला ने जलती आँखों से मुर्तजा को देखते हुए जबड़े कस, तुम नीच हो। मैं तुम्हारा साथ नहीं दूँगा। मैं मथुरा वापस लौट जाऊँगा.... तुममें हिम्मत है तो मुझे रोक लो।”[2]

माफिया में कोई किसी का न भाई, न दोस्त, होता है। सब अपने-अपने काम करते रहते हैं। यह दुनिया सामाजिक परिवार की दुनिया से बहुत दूर है। दुनिया में आदमी हर दिन अपनी जान से खेलता है। माफिया के लिए जमीन का टुकड़ा सोने की खान-सा बहुमूल्य है। जन क्योंकि जरूरत से बेहद ज्यादा है। इसलिए जान कीड़े-मकोड़े-सी मरती है। यहाँ वैभव की सर्वग्रासी चमक है और गरीबी का नागपाश भी उतना ही दारूण। देखते-देखते मुद्रा सम्राट बन जाने वाले सटोरियों, तिकड़मियों, तस्करी और अपराध सामंतों की मर्मस्पर्शी किंवदंतियाँ है। जो भूख पेट में महत्वकांक्षा की अतिरिक्त अग्नि जुटाती है। तभी दस हजार के लाभ में बेकार

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.32
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.247

नौजवान बरसों के लिए जले जाने की जोखिम उठा लेता है। ऐसे नेता और अफसर हैं, जो भ्रष्ट होने को गर्मजोशी से तैयार है। सौ साल पुरानी इमारतों के लंबे साये, अंधेरे कोने, पुरपेच गालियाँ और कीड़ों की तरह खदबदाता जनसमूह – माफिया की रमणीय, पावन लीला भूमि....।"[1]

2.2 वेश्यावृत्ति

वेश्यावृत्ति समाज में प्राचीन काल से दिखाई देती है। समय और समाज के साथ सिर्फ उसका रूप बदलता गया है। यह समाज की एक आवश्यकता है जो प्रत्येक काल में समाज में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रही। परन्तु अब तक समाज का यह वर्ग उपेक्षित रहा, घृणित, दृष्टिकोण से ही इसे देखा गया।

समाज में वेश्या का स्थान बहुत घृणास्पद है। वेश्या को कुल-कलंकिनी, डायन, चुड़ैल आदि कहा जाता है। वेश्या उसे कहा जाता है - जो स्त्री बाजार में बैठकर पुरुषों को अपने मोहपाश में जकड़ लेने काप्रयास करती है, अनेक पुरुषों के साथ समागम करती है। कोठे पर बैठकर नृत्य करती है और अपना मायावी जाल फैलाकर युवकों को उसमें फाँसती है, उसे नर्तकी, वेश्या, चुड़ैल आदि नामों से संबोधित किया जाता है।

भारतीय समाज की एक गंभीर एवं ज्वलंत समस्या है वेश्या समस्या। वेश्या-नारी का जीवन भारतीय समाज में एक ओर अभिशप्त जीवन की सृष्टि करता है। जो अत्याधिक प्राचीन काल से समय-समय पर अपने स्वरूप और उद्भव स्रोतों में परिवर्तन के साथ चला आ रहा है।

नारी जीवन की प्रमुख समस्याओं में वेश्यावृत्ति समस्या भी प्रमुखता से अंकित की गई है। वेश्यावृत्ति नारी जीवन की सबसे गंभीर समस्या है। समाज में नारी को अनेक स्थितियों में अत्याचार सहने पड़ते हैं। गरीब परिवार की नारियाँ ही अधिकतर वेश्यावृत्ति करने के लिए विवश हो जाती हैं। जीविका चलाने जैसी स्थितियाँ उसे

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.159

वेश्या बनने के लिए विवश कर देती है। वेश्या धंधे में नादान लड़कियों को और स्त्रियों को फँसाने का काम कभी-कभी औरत ही करती है परिस्थिति के कारण।

महानगरों में ज्यादातर औरतें वेश्या-वृत्ति की ओर बढ़ रही हैं। अपना परिवार चलाने के लिए विवाहित स्त्रियाँ भी घर की चौखट छोड़कर बाहर आ रही हैं। ज्यादातर औरतें अनपढ़, गंवार व गरीब होने के कारण समाज में वेश्या जैसे धंधे करने पर मजबूर हो जाती हैं। पेट की आग बुझाने के लिए नारियों को मजबूर हो कर तन और अपने सतित्व को बेचना पड़ता है। आर्थिक विषमताओं। सामाजिक स्थिति, कभी-कभी मनोवैज्ञानिक स्थिति और समाज की रूढ़ परम्पराओं के कारण नारियों के लिए वेश्यावृत्ति अपनाना आवश्यक-सा हो जाता है। नारी किसी-रुचि विशेष के कारण वेश्या नहीं बनती बल्कि समाज की परिस्थियाँ ही उस ओर धकेल देती हैं। उसकी दयनीय स्थिति समाज की विषमता उसके शोषण तथा उत्पीड़न पर आधारित है। यह निर्विवाद तथ्य है कि – "औरत पैदा नहीं होती उसे बनाया जाता है।" तो इसे भी एक निर्वावाद तथ्य ही मानना होगा कि – "वेश्या भी पैदा नहीं होती बल्कि उसे बनाया जाता है।" यद्यपि किसी न किसी विवशता के कारण नारी को वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती है पर वह उसको सहज स्वीकार नहीं करती और उसका मन उस जीवन से बाहर निकलने के लिए छटपटाता रहता है। परन्तु पुरुष जाति की लोलुपता एवं स्वार्थान्धता के कारण वेश्यावृत्ति में फँसी नारियों को उससे निकलने नहीं दिया जाता।

इसके (वेश्या) संबंध में डॉ. बिन्दू अग्रवाल कहती हैं – "जीवन के यथार्थ के प्रति इस आग्रह के ही कारण उसने जानबूझ कर न तो वेश्या को द्रष्टा अथवा पतिता के रूप में देखा है और न उसके वेश्यावृत्ति अपनाती है जिस प्रकार समाज में नारी नाना कारणों से वेश्यावृत्ति अपनाती है, इसी प्रकार वेश्याएँ नाना प्रकृति और प्रवृत्ति की होती हैं। इस युग के उपन्यासों में उसी प्रकार इसका चित्रण भी हुआ है।"[1]

---

[1] हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी – डॉ. रेखा कुलकर्णी, पृ.91

आज के आधुनिक समाज में विशेषकर नगरों और महानगरों में वेश्यावृति की समस्या एक गंभीर समस्या बनने लगी है। हमारे समाज मे ंनारी के अनेक रूप देखने को मिलते हैं जिसमें उसका वेश्या रूप एक महत्वपूर्ण अंग है। इस उपन्यास में महानगरों में होने वाले अत्याचार, अपराध, वेश्यावृत्ति आदि गुरुत्वपूर्ण समस्यों को सामने लाने का प्रयास किया है। लेखक ने बंबई जैसे महानगरों में पूँजीवादी समाज का वर्णन किया जिसमें निम्नवर्गीय नारियों के लिए वेश्यावृत्ति अपनाना आवश्यक-सा एवं बाध्यता-सा हो जाता है। वेश्या अगर इस दलदल से निकलना भी चाहती है तो उन्हें सामाजिक परिस्थितियाँ निकलने नहीं देती हैं। हर कोई व्यक्ति वेश्या को उसी निगाह से देखता है जैसे वह जन्म से ही वेश्या बनी हुई है। विवेच्य उपन्यास में कुमुद कहती है कि – "यह सत्य है शारीरिक सम्पर्क के साथ-साथ भावना में भी गहराई आती है, लेकिन यह संपर्क उस कोमलता का विस्तार है, जो दोनों के भीतर एक-दूसरे के लिए पहले से है। समागम धीरे-धीरे पनपे इसी लगाव की परिणति है। लगाव के बिना शारीरिक संपर्क वेश्यावृत्ति के बराबर है।"[1]

बीसवीं सदी में आकर यह समस्या और बढ़ गयी है। यह सामंत शाही और पूँजीवादी समाज में ही पनपती है। जहाँ पुरुष शोषक है और स्त्री शासित है।

2.3 पुरुष वेश्या (जिगोलो)

जिगोलो (Gigolo) का अर्थ एक पुरुष वेश्या जो पैसे के लिए वयस्क स्त्रियों की यौनिक इच्छाओं की तृप्ति करता है। इसको जिगोलो (Gigolo) कहते हैं।

स्त्री वेश्या के समान ही पुरुष वेश्या भी होते हैं। दोनों ही पैसे के लिए धंधा करते हैं। स्त्री-वेश्या की तुलना में पुरुष वेश्या के ऊपर शोध-कार्य बहुत कम हुआ है। इन कार्यों के आधार पर हम उसे दो अलग रूप में देख सकते हैं। इसके ऊपर अधिक शोध-कार्य आवश्यक है। पुरुष वेश्या को अनेक नाम से जाना जाता है। जैसे पुरुष वेश्या (Male Escorts), पुरुष यौन कर्मी (Gigolos), खरीदा हुआ युवक (Rent Boys), अविकल प्रतिरूप (नकली प्रतिरूप)(Models), अंगमर्दक (Messeurs) और

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.59

संघर्ष यौन कर्मी (Hustlers) आदि। इन सभी शब्दों का समानार्थी हिन्दी शब्द पुरुष वेश्या है।

Rent Boy खरीदा हुआ यवुक जो पैसे के लिए खुद को दूसरे की सेवा में नियुक्त करता है। वह युवक जो समलैंगिक यौन कर्मी नहीं है किन्तु वह पैसे के लिए अपने को अपने ग्राहकों की अतृप्त कामेच्छा को तृप्त करता है। इसको कभी-कभी 'Gay for pay' (पैसे दिया हुआ यौन कर्मी) कहा जाता है।

जब पुरुष वेश्या को 'बार' से या 'नगर के रास्तों' से 'चयन करके' या निर्वचन करके ले जाते हैं उनको कभी-कभी 'Johns or Tricks' कहा जाता है। इस परंपरा को हम 'बाईबल' (The Bible) में भी देख सकते हैं। पुरातन सभ्यता ग्रीक में भी देखने को मिलती है। ग्रीक सभ्यता में जो युद्ध में हार जाता था उसे बलपूर्वक पुरुष वेश्या बना दिया जाता था। यह सभ्यता हमें रोम में भी देखने को मिलती है। मध्यकालीन सभ्यता के इस्लाम वर्ल्ड में इस परंपरा को देख सकते हैं। इस प्रकार यह परंपरा पुरातन सभ्यता से धीरे-धीरे विकसित हो कर आधुनिक युग के 17वीं शताब्दी में पहले अमेरिका में शुरू हुई। 19वीं शताब्दी में नारी-वेश्यालय जैसे पुरुष वेश्यालय भी बने। ये वेश्याएँ (पुरुष) होटलों में सेक्स और अपने मुनाफे के लिए शराब बेचते थे। धीरे-धीरे यह परंपरा आगे बढ़ने लगी। अमेरिका, जापान, फ्रांस, लंदन, पेरिस, सिडनी आदि देशों व शहरों में यह परम्परा अपनी जड़े फैलाती रही। जापान में Kagema (कगेमा) Adultman कहा जाता है।

सन् 1980 में अमेरिका में इस परम्परा के ऊपर फ़िल्में बनी थी। इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता में जिगोलो की परम्परा विकसित हो कर भारतीय सभ्यता में धीरे-धीरे प्रवेश कर गयी। आज उसकी जड़े महानगरों में मजबूत हो चुकी हैं।

साधारणतः इस परम्परा में उच्चवर्ग की स्त्री, निम्न वर्ग के पुरुष के साथ अपनी कामेच्छा की तृप्ति करती हैं। यह पुरुष ग्रामीण होते हैं जो आर्थिक परिस्थिति के कारण महानगर में इस पेशे को अपनाने के लिए बाध्य हो जाते हैं। जैसे नील धनोपार्जन के लिए इस पेशा को अपनाता है।

2.4 विषम धनोपार्जन के साधन

महानगरों में धनोपार्जन करना बहुत कष्ट साध्य है। क्योंकि महानगर बाजार से जितना आकर्षक और लुभावना दिखाई देता है आंतरिक रूप से उतना ही अंतर्विरोध, विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ भरी होती हैं।

महानगरों में धनोपार्जन के लिए कई साधान हैं। जैसे व्यवसाय, कालाबजारी, माफिया, अपहरण, हत्या, दलाली, मजदूरी आदि। इन्हीं रूप के माध्यम से महानगरों के लोग धनोपार्जन करते हैं। लेकिन ‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ उपन्यास में भोला अपनी ईमानदारी बेच कर अपने और अपनी परिवार के लिए धनोपार्जन करता है। वह अंडरवर्ल्ड में शामिल हो कर नशीले पदार्थों से नागरीय परिवेश को कलुषित करने के साथ-साथ कानून को खोखला करता है। उसके साथ सरे बाजार उसे जूते-तले रौंदते भी है। इस प्रकार भोला बंबई में धनोपार्जन करता है। गफूर और भोला सुपारी ले कर यूनियन नेता के कुटुम्ब को ठिकाने लगाते हैं।

आजकल महानगरों के होटलों और बार में लड़कियों को नृत्य करने के लिए लाया जाता है। क्योंकि होटलों में ग्राहकों का मनोरंजन और शराब का मजा लूटाने के लिए अर्धनग्न नारियों की नृत्य परिवेषण (मॉर्डन कपड़े के साथ) होना आवश्यक है। होटलों की आमदनी बढ़ जाती है और नारियों को अपने परिवार के प्रति पोषण के लिए कुछ पैसे मिल जाते हैं। समाज में नारी अपनी भूख मिटाने के लिए तन और सतीत्व को बेचती रहती है। जैसे शालू “सूरों की एक इकाई पूरी होते ही पलभर को मौन छा गया। शालू ने अपने कंधों से एक वस्त्र निकाल कर नीचे फेंक दिया। कुछ विरामों के बाद शालू के सिर्फ दो अंतर्वस्त्र ही बचे रहै। अब उसके साँवले तन पर जहाँ-तहाँ पसीने की नमी उभर आई थी। माथे पर कुछेक बूँदे छलछला रही थीं। वैसी ही अधखुली मुस्कान अभी भी उसके चेहरे पर थी, पर उसे बनाए रखने की कोशिश भी उजागर थी।”[1] इस प्रकार शालू होटलों में नृत्य के साथ लोगों का मनोरंजन करती थी जिससे वह अपने परिवार का पोषण करती थी।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.40

आज पुरुष प्रधान समाज में नारी माँ नहीं है। बहिन नहीं है मात्र शरीर है और जिसे यह रौंदते हैं। पुरुष प्रधान समाज ने नारी को उपभोक्ता की वस्तु बना रखा है। पुरुष अपनी कामलोलुपता को पूर्ण करने के लिए नारी का उपभोग करता रहता है। लेकिन विवेच्य उपन्यास में नारियाँ अपनी शारीरिक व मानसिक तृप्ति के लिए पुरुषों का उपभोग करती हैं। पारूल, ब्लॉसम, यास्मीन, शिल्पा, फ्रांसीसी, कुमुद, कुंतल, कृष्णा, करुणा आदि अधेड़-धनाड्य महिलाएँ महानगरों में काम वासना की तृप्ति के लिए पुरुषों का शोषण करती हैं।

नील महानगर में धनोपार्जन के लिए अपनी खूबसूरती और कुँवारेपन को बेचता है। इसलिए उसने "तीन दिन में महताबजी से मिलने वाली एक मास के वेतन से भी भी ज्यादा कमा लिया था।"[1]

नील अपनी क्लाइंट के बिजनैस में हमेशा व्यस्त दिखाई देता है। इसलिए नील कहता है कि – "वक्त की मेरे पास कमी है। करीब दो घंटों की एक शाम का मुआवजा पाँच हजार होगा - चाहै वह दिलचस्प अंजाम तक पहुँचे या नहीं। पूरा वीकएंड इसका दुगुना होगा और फैंटेसी के साथ या बंबई से बाहर जाने पर तीन गुना।"[2]

नील जब अपने कार्य को व्यस्तता के कारण अपनी संपूर्ण क्लाइंट को तृप्त नहीं कर पाता तो उसे दुःख होता था।

जब नील, ने भोला को कहा – "एक शाम की कीमत पच्चीस हजार…"[3] तब भोला ने हामी में सिर हिलाया।

वीटी के पास जीपीओ वाली सड़क पर पान के लिए भोला ठहरा।

"सेठ, बैठने का?"[4] चमकीली साड़ी और पाउडर पुते चेहरे ने पूछा।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.118
[2] - वही - पृ.140
[3] - वही - पृ.158
[4] - वही - पृ.158

कैपिटल से मोड़ लेती कार में भोला बुदबुदाया, "दुनिया की सारी लड़ाई बस यही सिमटकर रह गई है – पेट और उससे नीचे की जगह।"[1] अर्थात् काम और अर्थ आज की उद्दाम आवश्यकता हैं।

"सामान्यत: महानगर गठन और प्रकृति मुद्रा-केन्द्रित है। नगरों की जीवन-शैली, आचार-विचार, भाव-भंगिमा सब मुद्रा अर्जन से संचालित है। उपनगर के स्टेशन पर लोकल पकड़ने के लिए लपकता हुआ आदमी, बिजनेस डिस्ट्रिक्ट में शोफर द्वारा चलाई जाने वाली मर्सिडीज में फाइल पर झुका हुआ आदमी, घड़ी देखकर मेकर चैबर्स में चारों लिफ्टों के बटन दबाने वाला आदमी सब लक्ष्य प्रेरित और एक ही पथ के पथिक हैं। सुबह चिड़ियों की चहचहाट से लेकर रात बाहर बजे तक नगरों में एक ही आवाज सबके दिमाग, दिल से बार-बार सुनाई देती है।"

कमाओ, कमाओ, कमाओ![2]

महानगरों में अर्थन्यूनता और अर्थ प्राचुर्य – दोनों अति पर हैं। गरीबी के तमाम हृदयविदाकर नमूने तो उसने कई शहरों में देखे थे। लेकिन यहाँ उसकी बहुत नग्न तथा विभत्स झलकियाँ मिलीं थीं। आज महानगरों में गरीबी इतनी बढ़ गयी है कि आदमी पैसे के लिए आदमी लड़ता है।

पूँजीपति समाज में आदमी-आदमी के बीच सिर्फ पैसे का संबंध ही रह गया है जो सामाजिक क्षेत्र में कोई माइने नहीं रखता है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.158
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.82

तृतीय अध्याय

‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में अर्थ केन्द्रित समाज व परिणाम

तृतीय अध्याय

‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में अर्थ केन्द्रित समाज व परिणाम

1. अर्थ केन्द्रित समाज
2. परिणाम
   - 2.1 व्यक्तित्व व समाज का पतन
3. विषम व्यक्तित्व
4. विषम स्त्री-पुरुष संबंध
   - 4.1 विवाहेतर संबंध
   - 4.2 पारिवारिक विघटन
   - 4.3 हत्या
   - 4.4 आत्महत्या
5. सामाजिक पतन
   - 5.1 विषम सामाजिक रूप
6. मूल्यों में गिरावट
7. भाषाई एवं रहन-सहन की क्षति
8. व्यवहारिक पतन

तृतीय अध्याय

‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में अर्थ केन्द्रित समाज व परिणाम

मानव जन्म से ही कुछ ऐसी मूल्य-प्रवृत्तियाँ और आवश्यकतायें लेकर आता है जिनकी संतुष्टि के लिए उसे आर्थिक –व्यवहार में प्रवेश करना ही पड़ता है। धर्म, कला, विज्ञान, साहित्य आदि सभी मानव संस्कृति के इतिहास में उत्तरोत्तर महत्वूपर्ण स्थान प्राप्त करते गये हैं। लेकिन इन सबकी आधारशीला मनुष्य की आर्थिक तुष्टि ही है। इसलिए तो जीवन-मूल्यों के इतिहास में सर्वप्रथम जिन मूल्यों का निर्माण हुआ वे हैं, आर्थिक मूल्य। आज भी अविकसित और अल्पविकसित जातियाँ विद्यमान हैं जिनमें चाहे दार्शनिक और कलात्मक मूल्यों का कोई स्थान न हो, लेकिन आर्थिक व्यवस्था वहाँ भी मौजूद है और वहाँ आर्थिक मूल्यों का अस्तित्व सब में विद्यमान है। मनुष्य के पारस्परिक संबंधों का वह संपूर्ण क्षेत्र जो कि मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप पनपता है। मनुष्य के परंपरागत समाज में जीने के लिए अर्थ की आवश्यकता इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी जितनी आज है। आधुनिक समाज में अर्थ बिना जीना मुश्किल हो जाता है। मानव समाज से अर्थ ग्रहण करके अपनी आवश्यकता पूर्ति करता है। आज अर्थ समाज में एक गंभीर और ज्वलंत समस्या बन गया है जिसके बिना मानव कुछ भी नहीं कर सकता है। वैज्ञानिक युग में विज्ञान जितनी ही सुविधा मनुष्य को प्रदान करता है मनुष्य उतनी ही जटिलता से फँस जाता है। अर्थ के बिना मनुष्य अपनी आवश्यकता और इच्छा शक्ति का विकास नहीं कर सकता है। मनुष्य के अंदर अनन्त इच्छाएँ हैं जो कभी पूर्ण नहीं होती हैं। इन इच्छाशक्ति के सहारे मानव जीता है। विवेच्य उपन्यास में भोला और नील अपनी-अपनी चाह को लेकर मायानगर में आते हैं। भोला अंडरवर्ल्ड में शामिल हो जाता है जिससे वह अर्थोपार्जन के लिए देश की नई पीढ़ी को अपने जूते-तले रौंदते हुए नशीले पदार्थ से नगरीय परिवेश को कलुषित करता है उसके साथ ही साथ कानून को खोखला

बनाता है। इसके परिणाम स्वरूप समाज के परिवेश के कलुषित होने के साथ अपराध, बलात्कार, अपहरण, हत्या और आत्महत्या आदि असामाजिक कार्य बढ़ता रहता है। इससे आम जनता खुद को सुरक्षित नहीं मानती है।

'दो मुर्दोंके के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में नील शैक्षिक संस्थाओं से प्रताड़ित होने के कारण नगरीय समाज में अपनी चाह को पूरा करने के लिए जिगोलो बन जाता है। विवेच्य उपन्यास में नारी पात्रों में यौनिक भूख ज्यादा है। इसलिए उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में नागरीय समाज में कुत्सित यौन का यथार्थ चित्रण किया है। नील जिगोलो बन नगर की अधेड़ महिलाओं की कामेच्छा को तृप्ति करता रहता है। इससे वह धनोपार्जन करता रहता है। आखिर उसका पेशा तो यही है।

1. अर्थ केन्द्रित समाज

आधुनिक समाज में अर्थ ही काम है। लेकिन भारतीय पारंपरिक विचारधारा के लिए यौन संबंधित धारणाएँ नवीन नहीं हैं। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक नारी के प्रेम, श्रृंगार एवं काम संबंधी तत्व चिंतकों एवं कवियों के लिए रहस्यात्मक ही बने रहे हैं। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही कालांतर में काम संबंधी सारी धुरियाँ परिवर्तित हो गई और काम की परिभाषा भी वह नहीं रही जो प्राचीन काल में थी।

हर युग में, हर देश में, धर्म और काम झगड़ते आये और अधिक बार यह हुआ कि काम की वायु से धर्म का दीपक बुझ गया है। "काम को अपदस्थ करने की चाहे जितनी भी चेष्टा की जाए, वह बार-बार सिंहासन के ऊपर आ बैठता है और शास्त्र एवं नैतिकता के प्रहरी उसे बाँधने की जो भी तैयारी करते हैं, उसपर सैक्स का देवता व्यंग्य से मुस्कुराता है। मानो वह यह कह रहा हो कि – इतने बंधन तो मैं तोड़ चुका, देखूँ इस बार तुम कैसे कड़ियाँ तैयार करते हो।"[1] काम के बारे में फ्रायड ने कहा कि – "काम सुख अत्यंत उत्कृष्ट सुख है और मनुष्य को इनसे

[1] धर्म, नैतिकता और विज्ञान – पृ.11

भागना नहीं चाहिए।"[1] लेकिन हमारा समाज अब भी पुराने संस्कारों से मुक्त नहीं हो सका है और ऐसे लोग अब भी हैं जो फ्रायड से सहमत नहीं हैं।

आज विज्ञान ने पुराने समाज के नेतृत्व की परस्पर नींव को ढीला कर दिया है तथा सैक्स विषयक ज्ञान आज के युवक और युवतियों के हाथों में बहुत सहज ढंग से पहुँच रहा है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए दिनकर ने कवित्वपूर्ण भाषा में लिखा है – "यह ज्ञान तो दुकानों से पुकार रहा है, डीलर के स्टालों पर इन्तजार कर रहा है, फ़िल्म के पर्दों पर चमक रहा है और उपन्यासों तथा अन्य साहित्य के जरिए घर-घर में प्रवेश कर रहा है।"[2] किरन और नील के संबंध को हम देख सकते हैं। यहाँ युवती विवाह पूर्व यौन संपर्क के कारण गर्भवती हो जाती है।

विवाह के बाद स्त्रियाँ अपने पारिवारिक जीवन से संतुष्ट नहीं है। क्योंकि स्त्री चाहती है कि शादी के बाद पुरुष उसे शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से खुश रखे। लेकिन यह आशा स्त्रियों की पूर्ण नही हो पाती। इसलिए विवाह के बाद भी स्त्री यौन इच्छाओं की तुष्टि या शारीरिक भूख की तुष्टि के लिए विवाहतेर संबंध रखती हैं। ये रिश्ता अँधेरे का होता है क्योंकि इस संबंध के लिए समाज किसी को मान्यता प्रदान नहीं करता है। ब्लॉसम विधवा होने के बावजूद काम तुष्टि के लिए तड़पती है। इसलिए नील को ब्लॉसम के प्रति वितृष्णा भाव जागृत होता है। लेकिन "ब्लॉसम के स्नानगृह से निकल कर निकट आते हुए निगाह मिलने पर वह किंचित आत्मसजग ढंग से मुस्कराई तो नील के मन में कामना की भावना जागृत होने लगती है। उसने ब्लॉसम को बाँहों में भरा तो उसने आतुरता से अपना मुँह ऊपर उठाया। चुम्बन का दबाव भी इसी की ओर से आया जिसकी बेकली पर उसे कौतुक हुआ वितृष्णा नहीं।"[3]

नील और ब्लॉसम के शारीरिक संपर्क के बाद ब्लॉसम सौ के कुछ नोटों को गिनने लगी और बोली "आठ सौ हैं।" "वैसे मैं पाँच सौ देती हूँ और जगह भी उसी

[1] उर्वशी : उपलब्धि और सीमा – पृ.31
[2] उर्वशी : उपलब्धि और सीमा – पृ.32
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.76

की होती है। पर तुम विशेष हो।"[1] "कम हैं?" वह मलिन हो गई "माफ करो। मैं और देती हूँ।" बढ़ती हुई धड़कन के बीच अचानक नील को दो एहसास हुए ढली हुई मांस पेशियों की ग्लानि नोटों की झलक से विलीन हो गई और साथ साथ ही ब्लॉसम का अपराधी-सा चेहरा उसे अपराध-बोध से भर गया।

नर नारी का आकर्षण स्वाभाविक एवं सहज है। नील और यास्मीन दोनों आकर्षित होते हैं। दोनों परस्पर को चुमने लगते हैं तो काम वंदना का आलोड़न धीरे-धीरे बढ़ने लगता है और शरीर की उष्मता भी बढ़ने लगती है। नील ने सोचा ब्लॉसम के विपरीत आज की इस प्रेमाकांक्षिक की माँग थोड़ी गहन थी। नील और यास्मीन के शारीरिक संपर्क के बाद तृप्त यास्मीन अपना पर्स से कुछ नोट निकाले "हजार हैं" उसकी ओर देखे बिना कहा और एक पल ठिठककर नोट उसकी कमीज की जेब में रख दी। "उनका यह संवेदनशील स्पर्श उसने अलक्ष्य नहीं रहा। ब्लॉसम ने नोट गिनते हुए उसके हाथ पर रखे थे, जैसे इस शहर में ग्राहक सौदा लेने के बाद भुगतान करता है। जिस मुद्रा को वह जीवन शैली में केन्द्रित मान रहा था, उसी के विनिमय ने अब उसे अस्थिर कर दिया था।"[2]

नारी आभूषण के साथ सुन्दर दिखाई देती है। नारी का सौन्दर्य बोध आभूषण के साथ है। जब यास्मीन कपड़े पहन कर बाथरूप से निकलती तो उसे देखते ही नील सोचता है कि – "वह अनावृत देह जिससे उसकी पहचान बनी थी, अब फिर आवरणों में छिपी थी। एक बार यास्मीन के चेहरे पर भी किसी पारदर्शी आवरण का आभास हुआ। यह वह भाव नहीं था, जो शैया के उस तृप्त चेहरे की आँखों में उमड़ रहा था।"[3]

आधुनिक युग में मनुष्य अपनी कार्य व्यस्तता के कारण दूसरे को देखता नहीं। इस प्रकार समय ही सबसे महत्वपूर्ण होता है। जैसे कुंतल राव ने एक घंटा तो प्रेम-चर्चा में ही लगा दिया था। उसने दो बार घड़ी देखी, पर उन्होंने संकेत नहीं

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.76
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.85/86
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.85

समझा। फिर पारिश्रमिक पहले से बता दिए जाने के बावजूद उन्होंने बीस मिनट हुज्जत की। उसे ऐसा लगा, जैसे वह कुंजड़ा हो। फिर उन्होंने एक-एक करके गिनते हुए उसे नोट थमाए, "एक सौ.. दो सौ... तीन सौ... एक हजार एक सौ... एक हजार दो सौ...।"[1]

वह कहना चाहता था, "कुंतल जी, दुनिया में विश्वास नाम की भी कोई चीज़ है।"[2] पर कह नहीं पाया। इस शहर में लेन-देन का यही दस्तूर है - बेलौस, नग्न। कुंतल के स्त्रित्व में उसे ऐसी ही क्रूर नग्नता का एहसास हुआ था- अपना पैसा वसूल करने की व्यवसायिक मनोवृत्ति का। वह असहाय शैया पर पड़ा रहा। कुंतल की जीभ उसके शरीर के मध्य भाग पर लपलपा रही थी। लिजलिजे छिपकली जैसे स्पर्श को सहन करने के लिए उसे अपने मनोबल से झूँझना पड़ा।

महानगर की स्त्रियाँ अपनी शरीरिक भूख को मिटाने के लिए दूसरे पुरुष से शारीरिक संपर्क रखती हैं। जैसे शिल्पा विवाहिता औरत है फिर भी कामवासना से तृप्त नहीं है। जब वह अन्य पुरुष (नील) के साथ शारीरिक संपर्क रखती है तो शिल्पा का पति उसे पकड़ लेता है और कहता है कि – "तो मेरे पीछे यह होता है ? कब से चल रहा है यह सिलसिला? एक मरद तेरे लिए काफी नहीं है?... गू की ढेरी में मुँह मारते बच्चों के बारे में नहीं सोचा?"[3] तब शिल्पा कहती हैं –"तुम्हें कुछ नहीं आता। तुम वन-टू-थ्री की तरह पी टी करते हो और सो जाते हो। मेरी अपनी भी जरूरतें हैं"[4] शिल्पा और शिल्पा के पति के झगड़े के बाद शिल्पा ने पर्स से नोट निकाले और सोफे पर पड़ी नील की कमीज के जेब में रख दिए और बाहर चली गई। दरवाजा बंद करते हुए शिल्पा की आँखों में ऐसी पीड़ा थी, जैसे डोली में बैठती हुई दुल्हन आखिर बार अपने मैके को देख रही हो।

नील अपने ग्राहकों को लेकर बहुत खुश था। क्योंकि उसे पैसे के साथ-साथ अतिरिक्त भुगतान मिल जाता था। इसलिए वह अपने शयनकक्ष को छोड़ कर दूसरे

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.133

[2] - वही - पृ.133

[3] - वही - पृ.142

[4] - वही - पृ.142

के शयनकक्ष का प्रयोग करता था। जिसके लिए ग्राहक को देखकर एक हजार या उससे ऊपर अतिरिक्त भुगतान लेता था। अपने निजी शयन कक्ष में ग्राहक को ले जाना उसे पसंद नहीं था। उसे यह भी पसंद नहीं था कि ग्राहक रात को यहीं सो जाए। हालाँकि कल वैशाली ने अतिरिक्त पारिश्रमिक के साथ ऐसी पेशकश रखी थी। पर उसने नींद आने का बहाना बना दिया।

"तो तुम सो जाओ।"[1] वैशाली ने मुस्कुराकर कहा, "मैं सिर्फ तुम्हारे पास पड़ी रहूँगी।"[2]

"क्या है कि दूसरा कोई बिस्तर पर हो, तो मुझे निंद नहीं आती।" [3] "अच्छा? औरतों की सर्विस चलाते हो और उन्हीं से ऐसा परहेज?"[4] वह कह नहीं पाया कि अपनी सर्विस से जुड़ी निन्यानवे प्रतिशत स्त्रियों से उसे परहेज ही नहीं वितृष्णा है।

काम-तृष्टि का एक दूसरा पहलू भी है और वह मनुष्य की सृजनात्मकता। काम ही मनुष्य को सन्तानोत्पत्ति की ओर प्रेरित कर उसे सामाजिकता की ओर उन्मुख करता है। जब पारूल और नील का संपर्क बढ़ता गया तो शारीरिक संपर्क भी चरम सीमा तक चला गया। जिससे पारूल गर्भवती भी हो जाती है। इस अँधेरे रिश्ते की सामाजिक मान्यता प्राप्ति के लिए पारूल बच्चे को जन्म देना चाहती है। लेकिन अपनी पारिवारिक परिस्थिति के कारण पारूल बच्चे को जन्म नहीं देती है। नील, पारूल से शारीरिक संपर्क इसलिए बनाता है कि अपनी गरीबी दूर कर सके। लेकिन पारूल उसे पति-पत्नी के रिश्ते में बदलना चाहती है। जो कभी संभव नहीं था। फिर भी पारूल अपने गले से कार्टियर की माला उतार कर नील के गले में डाल देती है। और कहती हैं कि "तुमने मुझे जिंदगी का पहला ऑर्गेज्य दिया है...।[5] मैं भावात्मक रूप से तुम्हारी पत्नी हूँ। पारूल को पहले से ही जयंत पसंद नहीं था।

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.160
[2] - वही - पृ.160
[3] - वही - पृ.160
[4] - वही - पृ.160
[5] - वही - पृ.210

लेकिन पारिवारिक परिस्थिति में आ कर उससे शादी कर लेती है। पारूल अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए नील से प्रेम करती है।"[1]

संसार में मनुष्य को जीवित रहने के लिए यदि भूख और प्यास की तृप्ति अपेक्षित होती है तो सुखद और शान्तिपूर्ण जीवन-यापन के लिए कामेच्छा की संतुष्टि भी आवश्यकता होती है। पेट की भूख के समान कामतृप्ति की भूख भी मनुष्य को अत्यधिक व्याकुल करती है। अर्थ केन्द्रित समाज में परिणाम स्वरूप विभिन्न असामाजिक कार्य सृष्टि होती है जिसे सामाजिक मान्यता नहीं है। अत: परिवार में बिखराव पैदा होता है।

माना जाता है कि यौन प्रवृत्ति के संस्कारपूर्ण रूप का विकास है प्रेम। प्रेम मानव चरित्र का प्रेरक तत्व है। "शारीरिक और संवेगात्मक आकर्षण के मिलन बिन्दु पर प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम केवल आध्याम की अनुभूति नहीं है, शरीर से उसका दृढ़ संबंध है, मांस में उसकी चेतना है, रक्त में उसका उष्ण है। यह वासना चाहे अच्छी हो या बुरी, जीवन का अनिवार्य अंग है। नर-नारी का आकर्षण स्वाभाविक एवं सहज है। इस दृष्टि से वह व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन प्रसंगों से जुड़ी हुई परिपक्व जटिल प्रक्रिया है।"[2]

आधुनिक समाज की काम लीला-भूमि में अर्थशास्त्र की घुसपैठ मानी जाती है। इस समाज में काम के माध्यम से अर्थ कमाते हैं। इसलिए समाज के दो रूप सामने आते हैं। काम और अर्थ। आधुनिक समाज में अर्थ ही काम प्रधान बन जाता है। क्योंकि अर्थ और काम दो पुरुषार्थों से जुड़ा हुआ है। आजकल सारे संसार के लोग काम वासना के पीछे भाग रहे हैं। जिसका मूल कारण अर्थ है। जिन्होंने अर्थ और काम दोनों पुरुषार्थों को अपने भीतर संयोजन कर लिया है वह आज के जमाने में सौभाग्यशाली व्यक्ति होकर भी विनाश को प्राप्त होता है। जैसे नील ने इन दोनों पुरुषार्थों का अपने अंदर संयोजन करके धनोपार्जन का मुख्य साधन बना लिया है किन्तु परिणाम दैनीय है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.210
[2] साठोत्तर हिंदी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण – डॉ. रेखा शर्मा, पृ.23

2. परिणाम

काम असंतुष्टि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया यह होती है कि व्यक्ति काम-क्षुधा को शान्त करने में संलग्न हो जाता है। और इस रूप में वह अपनी इच्छापूर्ति का प्रबल प्रयास करता है। जैसे - ब्लॉसम, यास्मीन, करुणा, पारूल, शिल्पा, कुंतल, सौदामीनी आदि।

अगर व्यक्ति उत्साहहीन अथवा निराश हुआ तो उसकी काम-अतृप्ति उसमें बल हीनता की कुण्ठा उत्पन्न करके उसे निक्रिय बना देती है। जैसे पारूल और शिल्पा आदि।

काम-अतृप्ति की प्रतिक्रिया एक यह भी होती है कि व्यक्ति अपनी अतृप्ति-जन्य आत्महीनता को आतंक से आवृत रखने में काम-संबंधों के क्षेत्र में आक्रमक तथा प्रतिहिंसक हो जाता है।

कभी-कभी अतृप्ति की प्रतिक्रिया न इच्छा-पूर्ति के रूप में होती है, न निष्क्रियता के रूप में और न ही आक्रमकता तथा प्रतिहिंसा के रूप में बल्कि वह परिस्थितियों के साथ समझौता कर लेने की होती है। व्यक्ति परिस्थितियों के साथ सघर्ष करने के बजाय अपने आपको ही उनके अनुकूल बना लेता है।

2.1 व्यक्तित्व व समाज का पतन

व्यक्ति अपना व्यक्तित्व समाज द्वारा बनाता है। यह कहना कठिन है कि व्यक्तित्व कितना वंशानुक्रम द्वारा निर्धारित होता है एवं कितना वातावरण के द्वारा निर्धारित होता है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि वंशानुक्रम कुछ योग्यताएँ एवं क्षमताएँ व्यक्ति को प्रदान करता है और इसके साथ-साथ उसकी कुछ सीमाओं से भी बंधता है।

सामान्यत: हम व्यक्तित्व का प्रयोग किसी व्यक्ति के लिए करते हैं तो उसके स्थूल अर्थ को लेते हैं। अर्थात् व्यक्ति के भौतिक स्तर पर गोचरित होने वाले व्यक्ति का आकार वेशभूषा तथा शारीरिक रूपरेखा आदि से लिया जाता है। वास्तव में

व्यक्ति की बाह्य-संरचना, वास्तविक व्यक्तित्व का बोध नहीं कराती है। इसलिए व्यक्तित्व का तात्पर्य केवल व्यक्ति की बाहरी वेशभूषा नहीं है। उसके साथ-साथ आंतरिक अर्थ भी है। अर्थात् व्यक्ति का संबंध उसके मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व से संबंधित है। मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व (सैकलॉजिकल पर्सनालिटी) के अंतर्गत व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्ति, सोचने का ढंग, विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया करता है आदि आंतरिक गुण आ जाते हैं। अर्थात् व्यक्तित्व वह समग्रता या योग्यता है जिसमें व्यक्तित्व के संपूर्ण बाह्य एवं आंतरिक गुणों का समावेश रहता है। मनुष्य की कोई भी मानसिक व शारीरिक क्रिया व्यक्तित्व से पृथक नहीं है। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति की समस्त शारीरिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं का सामंजसित रूप है।

एक समाज में व्यक्ति का व्यक्तित्व, व्यक्तित्व की प्रकृति, बनावट आधार एवं प्रत्ययों का समझना आत्याधिक महत्वपूर्ण है। समाज में अनेक शक्तियाँ होती हैं जो व्यक्ति पर प्रभाव डालती हैं। इन शक्तियों के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व एक निश्चित आकृति ग्रहण कर लेता है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्णन करना सरल नहीं है।

मानव सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए अपनी आवश्यकता पूर्ति करने के साथ-साथ व्यक्तित्व का भी विकास करता है। इसलिए व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के लिए अपना संबंध समाज से जोड़ता है और आशा भी करता है कि आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो जाए। जब उसकी आशा पूर्ति नहीं होती तो व्यक्ति में निराशा, असन्तुष्टि आदि भावना पनप जाती हैं और समाज द्वारा मान्य स्थापित नियमों, आदर्शों तथा मूल्यों को स्वीकार करने से इनकार कर देता है। इसलिए समाज का पतन होता है। जब समाज में व्यक्ति का पतन होगा तब समाज का भी पतन होगा।

गाँव में जब भोला की आवश्यकता पूर्ण नहीं होती वह महानगर चला जाता और अंडरवर्ल्ड में शामिल हो जाता है। भोला नगरीय समाज में अपने व्यक्तित्व के साथ अपना व्यवहार भी बदलता है। भोला अंडरवर्ल्ड में शामिल होने के बावजूद

अपनी अंदर की इनसानियत को जिंदा रखता है। जैसे कि “मौका पाकर खुद निकलने के बजाय बाँह में लगी गोली के बावजूद वह पच्चीस लाख के पैकेट और जख्मी गफूर को बचाने के लिए अपने को खतरे में डालता है।”[1]

इस घटना से भोला के ऊपर अंडरवर्ल्ड का प्रभाव बढ़ता गया। लेकिन भोला के अंदर एक ईमानदार चौकीदार का व्यक्तित्व घटित होने लगा था। भोला अपने माफिया भाइयों के साथ नशीले पदार्थ द्वारा महानगरीय समाज को कलुषित करने के साथ-साथ आम जनता का भी शोषण कर रहा था।[2]

अत: भोला का व्यक्तित्व पतन की ओर जा रहा था क्योंकि “भोला नशीले जहर से देश की नई पीढ़ी को मार रहा था। कानून के ढाँचे में न सिर्फ घुन बन कर उसे खोखला करता था बल्कि सरे बाजार को अपने जूते-तले रौंदता भी था।”[3] उसके साथ-साथ कोलाबा से मालाबार हिल तक विष बेलों को फैला रहा था। इस विष बेलों को भोला अकेला फैला नहीं रहा था। उसके साथ इम्तियाज, इलियास भाई, शंकूर भाई, किट्टू, मुर्तजा, नूरभाई बन्ने आदि भाइयों का भी हाथ था जो समाज में एक प्रतिष्ठित आदमी थे। हमारे समाज में कालाधन उपार्जन करने वाले बहुत लोग हैं जो अपनी स्वार्थ की पूर्ति को देखते हैं, समाज और किसी दूसरे की ओर नहीं देखते हैं। ये लोग अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की जान भी ले लेते हैं। जैसे भोला और गफूर अपने स्वार्थ के लिए यूनियन नेता का कुटुंब ठिकाने लगाते हैं। उसी प्रकार मुर्तजा सोमपुरिया सेठ से सुपारी ले कर नील का मार डालते हैं।

इस प्रकार समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व पतन के साथ-साथ समाज का भी पतन होता है। भोला के अपराध करने के बाद उसके अंदर की भावना उसे ग्लानि में परिवर्तित कर देती है। इसलिए वह कहता है कि – “और मुझे देखो, मथुरा में भाँग के आगे किसी चीज़ का हाथ नहीं लगाया। यहाँ कौन-सा नशा है, जो मुझसे छूटा

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.65
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.19
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.145

हो ? एक दिन मांस न मिले तो मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है।... कैसा पतन हो गया है मेरा।"[1]

नील गोरे रंग और गठीले बदन का ऊँचा स्वस्थ युवक था। उसे देखते ही किरन और कुमुद आदि अविवाहिता युवतियों का अल्हड़ यौवन उसके हाथों से छूट जाता है। इसलिए किरन गर्भवती हो जाती है। कुमुद शादी करने पर मजबूर हो जाती है। क्योंकि कुमुद "अपने अकेलेपन से, अँधरे के रिश्तों से थक गई थी।"[2]

"उसे अपनी सालगिरह पर उनका टूटना याद आया।...हमारे रिश्ते का कोई भविष्य नहीं... भीगे स्वर के उनके शब्द उसके भीतर अनार की तरह चमकते बुझते रहे।"[3]

उपन्यास में लेखक सुरेन्द्र वर्मा ने इस प्रकार नगरीय समाज को सामने लाने की कोशिश की जो बाजार अर्थ संस्कृति को बढ़ोत्तरी देते हुए कुत्सित सैक्स को बहुत ही प्रामाणिकता से प्रस्तुत किया है। साधारत: वेश्या अपने पेट की भूख के लिए धंधे करती हैं लेकिन यहाँ स्त्रियाँ पूँजीपति घराने की हैं उनके पास पैसे की कमी नहीं है। उनके पास शारीरिक कामवासना की कमी है। इसलिए अधेड़-धनाड्य महिलाएँ अतृप्त काम-वासना से तड़प रही हैं। नागरीय समाज एक समस्या है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ समाज का भी पतन करता है। नगरीय समाज अर्थ को महत्व देता है। जैसे भोला, नील, इम्तियाज, इलियास, शंकूर, किट्टू, नूर, बन्ने, मुर्तजा आदि बाजारवादी अर्थ संस्कृति से लड़ते हैं। जब व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती तब वह समाज के नियम को तोड़ता है। उसी प्रकार इन लोगों की आशा पूर्ण नहीं होती इसलिए ये लोग नगरीय समाज के नियम तोड़ने के साथ-साथ नशीले पदार्थ से परिवेश कलुषित करते हैं। ये अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ दूसरे लोगों का भी व्यक्तित्व नष्ट कर पतन की ओर जाते हैं।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.157
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.88
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.88

व्यक्ति और समाज में एक अटूट संबंध है। दूसरे शब्दों में एक दूसरे के पूरक हैं। क्योंकि वयक्ति समाज का ही एक अंग है। उसी तरह समाज भी कुछ व्यक्तियों का संघ, समुदाय का एकत्रीकरण है। व्यक्ति की प्रगति से समाज की प्रगति होती है और समाज के व्यक्तियों का विकास समाज के वातावरण पर निर्भर करता है। समाज ही व्यक्ति के कार्य कलापों पर नियंत्रण रखता है।

व्यक्ति और समाज का संबंध बहुत ही प्राचीन है। ज्यों ही व्यक्ति की उत्पत्ति हुई उसके साथ-साथ ही समाज का निर्माण हुआ। व्यक्ति अपना विकास समाज की सुदृढ़ एवं अनुकुल परिस्थितियों में ही कर सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि – व्यक्ति समाज के बिना और समाज व्यक्ति के बिना दोनों अपने आप में अधूरे हैं।

जिस प्रकार समाज व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों का विकास करके व्यक्ति का समाजीकरण करता है, उसी प्रकार व्यक्ति भी अपनी प्रतिभा से विभिन्न कार्यों को संभाल करके समाज का विकास करता है। समाज का निर्माण परस्पर व्यक्तियों के द्वारा ही किया जाता है।

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि मनुष्य समाज का अनिवार्य अंग है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं को परिस्थिति के अनुसार ढालने की क्षमता रखता है। यह भी सत्य है कि परिस्थिति के अनुसार उसका भी किसी-न-किसी हदतक व्यवहार व आचरण बदलता रहता है। यह सच है कि व्यक्ति न्यूनाधिक मात्रा में समाज पर निर्भर रहता है।

समाज और व्यक्ति के बीच न तो समझौते का संबंध है न अंग व शरीर का है बल्कि पारस्परिक आश्रितता का है। व्यक्ति व समाज के संबंध को समझने के लिए किसी भी पक्ष को दूसरे से अधिक महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। समाज की रक्षा का दायित्व भी व्यक्ति के कन्धों पर ही है। व्यक्ति के समाज के प्रति अनेक कर्तव्य हैं। इससे भी ज्यादा सामाजिक परिवेश में पूर्ण दायित्व व निष्ठा से किया गया कार्य समाज के प्रति कर्तव्य का द्योतक है। व्यक्ति को समाज में सामाजिक नीतियाँ समान धन का वितरण समाज की सुरक्षा, शोषण का विरूष, सामाजिक-स्वतंत्रता, अनुशासन बनाए रखना, सामाजिक न्याय शिक्षा का प्रचार आदि में कर्त्तव्यों का

निर्वाह ही करना है। इससे व्यक्ति के कर्त्तव्यों की पूर्ति होती है और समाज का विकास होता है। जब व्यक्ति उन्हीं सब कार्य से निवृत्ति हो कर समाज में असामाजिक कार्य कें लिप्त होता है तो व्यक्ति का पतन होने के साथ समाज का भी पतन होता है।

3. विषम व्यक्तित्व

व्यक्ति का जन्म बहुत ही संगठित समाज में होता है। जिस संस्कृति विशेष में वह रहता है वही उसके तमाम अनुभवों को जिनसे उसकी जिन्दगी बनती है, गति और दिशा प्रदान करती है। किसी व्यक्ति के सामने काम करने के कई रास्ते खुले रहते हैं और वह अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार उनमें से किसी एक को चुन लेता है। लेकिन उसका यह चुनाव या चुनाव की इच्छा भी उसकी सांस्कृतिक परम्पराओं और संभावनाओं से होती है।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में कहना सरल नहीं है। लेकिन उस व्यक्ति के साथ मिलना, उससे बात करने पर पता चलता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व किस प्रकार का है।

भोला ईमानदार चौकीदार था। जब वह मायानगर के अंडरवर्ल्ड में शामिल होता है। तब भोला के व्यवहार और व्यक्तित्व में परिवर्तन आ जाता है। बंबई के फुटपाथ पर चलते हुए भोला बोला – "नील भैया, यहाँ की कन्याएँ बड़ी मुलायम हैं।"[1]

"हनुमानजी के भक्त को यह सब देखना चाहिए ?"[2] नील मुस्कुराया।

"हनुमानजी का भक्त हूँ, पर रह रहा तो रासलीला की नगरी में हूँ।... फिर आज तो यह मॉडर्न पहनावा भी चढ़ गया।"[3]

इस प्रकार भोला मायानगरी में धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। वह धीरे-धीरे अंडरवर्ल्ड के भाइयों के साथ मिल कर मायानगरी को नशीले पदार्थ में भर देता है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.25

[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.25

[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.25

इन पदार्थों के सहारे भोला को मायानगरी में और अंडरवर्ल्ड की दुनिया में कामयाबी मिलती है। इसलिए वह इस धंधे को कर्तव्यपरायणता और वफ़ादारी से करता है। भोला के व्यक्तित्व परिवर्तन से उसके जीवन जीने की प्रक्रिया बदल जाती है। पहले वह लड़कियों से बात नहीं करता था क्योंकि भोला हनुमान जी का भक्त था। लेकिन मायानगरी हनुमान जी के भक्त को कामवासना का भक्त बना देती है। इसलिए वह नंगे कपड़े पहने शालू का नृत्य देखने को आता है। उसके साथ बात करते हुए और एडवांस देते हुए प्यार करने लगता है। भोला कहता है कि " तुमको हमेशा एडवांस क्यों चाहिए होता है ?"[1]

भोला को धीरे-धीरे अंडरवर्ल्ड के भाइयों के गुप्त कार्य सब अच्छे लगने लगते हैं। वह भी अपने को इस कार्य में शामिल कर लेता है। इसलिए भोला अंडरवर्ल्ड के भाइयों द्वारा दिया गया मायानगरी का मानचित्र दीवार पर चिपका कर हनुमान चालीसा जैसे सुबह शाम पाठ करता है। क्योंकि इस धंधे में बहुत लफड़े होते हैं। नहीं मालूम होगा तो वह निकल नहीं पाएगा, फँस जायेगा।

इस प्रकार भोला अंडरवर्ल्ड में इधर का माल उधर तक उधर का माल इधर ले आना कार्य करते हुए कभी -कभी बाहर से आये माल को बड़ी सतर्कता के साथ ग्रहण करता था।

जब उसे शालू की ओर से ग्रीन सिंगनल मिल जाता है तो वह शालू के होठों को चूम लेता है। शालू फक-से हँस कर कहती हैं कि –"देवा रे, हनुमान जी का भक्त इंग्लिश स्टाइल लाइन मारता है...।"[2]

भाइयों के कहने पर भोला सुपारी लेकर यूनियन नेता को ठिकाने लगाता है। इस प्रकार भोला मायानगर में हत्या, अपहरण दलाल आदि विभिन्न असामाजिक कार्य में लिप्त हो जाता है।

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.41
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.71

माफिया महानगरों में पनपने का मुख्य कारण स्थान ही था। जो इन लोगों के कार्य के लिए सबसे अच्छी पृष्ठभूमि माने जाते थे। माफिया अपने धंधे से पहले पूँजीपति, राजनेता और पुलिस को अपने हाथ में लेता है। इन लोगों की सुरक्षा पा कर माफिया आगे बढ़ जाता है और नगर में अपना धंधा विस्तार करने लगता है। इस प्रकार अंडरवर्ल्ड और माफिया में भोला के साथ इलियास भाई, शंकूर, गफूर, नजीर, किट्टू, बन्ने, मुर्तजा, इम्तियाज भाई आदि भाइयों महानगरों में अपनी विषम व्यक्तित्व के कारण समाज में असामाजिक कार्य सृष्टि करते हैं। इन लोगों के ऐसा बनने का मुख्य कारण गरीबी, आर्थिक परिस्थिति और सामाजिक दबाव दायी है।

नील शैक्षिक संस्थाओं से प्रताड़ित होने के कारण अपना लक्ष्य पूरा नहीं कर पाता है। इसलिए नील लक्ष्य भ्रष्ट होकर अपने व्यक्तित्व और योग्यता को बाजार में बेचने को तैयार हो जाता है। व्यक्ति जिस, समाज में रहता है उस समाज की शक्तियाँ व्यक्ति के ऊपर हावी हो जाती हैं। इसलिए व्यक्ति एक निश्चित दिशा की ओर गति करता है। नील के ऊपर नगरीय के हावी होने पर अपने व्यक्तित्व को बदलता है। खूब सूरती के साथ कुँआरापन नील को नगरीय समाज में धनोपार्जन के लिए मदद करता है। इसलिए नील मिसेज दस्तूर का शोध सहायक बनता है।

सजीला, शालीन, जहीन नील असंतुष्ट अधेड़-धनाड्य महिलाओं के लिए पुरुष वेश्या बन जाता है। उसका सितारा ऊँचा चढ़ता जाता है। फ्लैट, टेलीफोन, कार, विदेशी प्रसाधन और काम सिर्फ आत्मा को दबाकर शरीर बेचना है। यह सिलसिला कुमुद से शुरू हो कर ब्लॉसम, यास्मीन, कुंतल, स्टेल, रंभा, कृष्णा, सौदामिनी, शिल्पा, पारूल, करुणा, फ्रांसीस, स्विस औरत, कुंतल राव, वैशाली उर्वशी, नैन तक जाता है। ये सब महानगर की कामवासना से अतृप्त स्त्रियाँ हैं। जो अपनी काम वासना को महत्वपूर्ण मानती हैं। समाज और परिवार की मार्यादा को नहीं देखती हैं। जैसे शिल्पा कहती है कि –"मेरी अपनी भी जरूरत है।"[1]

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142

उसी प्रकार पारूल कहती है कि –“मुझे यह बच्चा चाहिए। मैं भावात्मक रूप से तुम्हारी पत्नी हूँ। इस देश का कानून ऐसा रिश्ता नहीं मानता। मैं मानती हूँ।”[1]

इससे पता चलता है कि पारूल एक बच्चे की माँ होने के बावजूद और पति होते हुए कामवासना की तृप्ति के लिए दूसरे पुरुष से नाजायज संपर्क रखती है। इससे वह गर्भवती हो जाती है। इस बच्चे को या नाजायज संबंध को सामाज की मान्यता प्रदान करना चाहती है। जो असामाजिक है।

लेखक सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास ‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में धनाढ्य स्त्रियों के कुत्सित सैक्स का चित्रण किया गया है। पूँजीपति समाज में सैक्स की मांग ज्यादा है। ऐसा माना जाता है कि - जहाँ माँग होगी वहाँ सप्लाई होगी। इसलिए कहा जाता है कि – “हम जिस पूँजीवादी समाज में जी रहे हैं, उसमें हमारे सामने पेट भरने का एक ही रास्ता है - अपनी किसी काबिलियत को बाजार में बेच पाना।”[2] बड़े बाजार में बड़ी कीमत छोटे बाजार में कम कीमत।

4. विषम स्त्री-पुरुष संबंध

सृष्टि के विकास के साथ ही सभी स्त्री और पुरुष का संबंध चला आ रहा है। समाज के दो प्रमुख पदन्यास पर ही संसार सुख पूर्वक रह सकता है, नर और नारी का प्रश्न मूलतः सीमित देशकाल का प्रश्न न हो कर सृष्टि विधान विषयक एक गांभिर्य, सार्वजनिक, सार्वभौमिक व सांस्कृतिक प्रश्न है। इसलिए भारतीय संस्कृति में स्त्री और पुरुष की आत्मा का आधा भाग मानकर स्त्री के बिना मनुष्य (पुरुष) का जीवन अपूर्ण बनाया गया है।

हमारे समाज में पति-पत्नी संबंध को पारिवारिक जीवन का केन्द्रित संबंध माना जाता है। क्योंकि यहीं से अन्य संबंध उत्पन्न होते हैं। जीवन में सुख-समृद्धि, सम्पन्नता एवं स्वाभाविकता इन दोनों के पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव पर

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.210
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.145

आधारित हैं। भारत में पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा के कारण नागरिक जीवन में इस संबंधों के अंतर्गत बहत तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है।

आमतौर पर स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। ये समाज का प्राकृतिक नियम हैं। विवाह के बाद यह आकर्षण यौन-संबधं का सहचर्य बन जाता है। लेकिन आधुनिक युग की स्त्री-पुरुष का आकर्षण इतना गहन होता है कि विवाह से पहले यौन संबंध रखते हैं। विवेच्य उपन्यास में किरन और नील का विवाह से पहले समाज में असामाजिक संबंध था। इसलिए किरन विवाहपूर्व गर्भवती हो जाती है जो समाज में असामाजिक परिस्थिति की सृष्टि करती है।

आधुनिक युग में युवक और युवतियाँ विवाह में अनिच्छा व्यकत करते हुए विवाहपूर्व यौन-संबंध को सादर से ग्रहण करते हैं। कुमुद अपनी प्रेम भरी बातों से नील को फँसाते हुए कहती हैं कि – "तुम्हारा जैसा सजीला युवक किताबों से अपना सिर खपाये यह बंबई के युवती-समाज का अपमान है।"[1]

कुमुद का ऐसा व्यवहार उसे मोहक नहीं लगता था, यह कहना झूठ होगा। लम्बे अर्से से वह भावात्मक शून्य में जी रहा था। किरन की याद आती थी पर भावनाओं में आवृत्त नहीं सिर्फ जिस्म के स्तर पर। बीना का चेहरा सामने आता था, पर भीतर कोमलता भरने से पहले ही आखिरी भेंट की कड़वाहट से वह विचलित हो जाता था। "मगर मैं जानती कि तुम सिर्फ पुंसत्व से भरे छोड़े हो, तो मैं तुम्हारी तरफ देखती भी नहीं।"[2]

कुमुद विवेच्य उपन्यास की ऐसी पात्र है जो स्त्री-पुरुष के संबंध को बड़ी बेबाकी से नील के सम्मुख प्रस्तुत करती है। लेखक ने इस सारे प्रसंग को तीन चरणों में प्रस्तुत किया है। इस शोध में इन अश्लील प्रसंगों को उद्धृत करना समुचित नहीं होगा। कुमुद एक वेश्या है किन्तु नारी और नर के सहज यौन संबंध को उसने एक दिशा प्रदान की है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.48
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.48

"संबद्ध स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण बुनियादी शर्त है।"[1] कुमुद ने दीक्षा के पहले दिन कहा – "यह सच है कि शारीरिक संपर्क के साथ-साथ भावना में भी गहराई आती है। लेकिन यह संपर्क उस कोमलता का विस्तार है, जो दोनों के भीतर एक-दूसरे के लिए पहले से है। समागम धीरे-धीरे पनपने वाले उसी लगाव की परिणति है। लगाव के बिना शारीरिक संपर्क वेश्यावृत्ति के बराबर है।"[2]

"स्त्री और पुरुष वीणा और वादक के समान हैं।"[3] कुमुद ने अगला पाठ पढ़ाया, "नि:संदेह ऊँचे स्तर की निर्दोश कसी हुई वीणा भी रागोपलब्धि में अपना योगदान देती है, लेकिन अगर वादक में सही रागिनी की समझ और ऊँगलियों में सही राग निकालने का कौशल नहीं है तो? एक रागिनी फूटती है , तो कव्वे बोलने लगते हैं और दूसरी उभरती है, तो हिरन आकर झूमने लगते हैं। पुरुष होने के नाते समागम की सफलता की मुख्य जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है। तुम्हारा व्यवहार, तुम्हारी कार्य-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि स्त्री भीतरी कोमलता से छलकने लगे। इस बाँध तोड़ देने की बेकल स्थिति तक स्त्री को लाना यह भावात्मक कुरुक्षेत्र की अनिवार्य चुनौती है। संवेदनशील स्त्री धीरे-धीरे तैयार होती है। इस तैयारी के विविध सोपानों की बारीक समझ ही यौन-कला है और यौन-विज्ञान भी।"[4] उनके सुंदर चेहरे पर लुभावनी संजीदगी थी, " मैं सारी ललितकलाओं से ऊपर प्रेम-कला को प्रतिष्ठित करती हूँ। एक नृत्यांगना और उसके साजिंदे या जुगलबंदी में सिमार और तबला वादक एक ही कलापथ के सहयात्री हैं। लेकिन उनके आदान-प्रदान की एक सीमा है। वे अपने कला पक्ष, अपने क्राफ्ट का संगम कर रहे हैं। उनका व्यक्ति अलग खड़ा है। लेकिन प्रेम में दो शरीरों, दो भावतंत्रों और दो स्नायुमंडलों का मिलना होता है। अपने इस संसार में अपने-आपके स्वैच्छिक समर्पण की इससे मिसाल दिखाई नहीं

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.59
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.59
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.59
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.59

देती। यह मेरे लिए सुंदरता का स्वच्छ प्रतिमान है। इसलिए मेरे तई पर प्रेम-शैया पावन और वंदनीय है।"[1]

"विपरीत लिंगियों के बीच स्पर्श विलक्षण है।"[2]

"इसकी उपमा के लिए मुझे शब्द नहीं मिल रहे ... आपसी लगाव को रेखांकित करने वाला स्पर्श बेजुवान संदेशवाक है। स्पर्श वे अमूर्त कुंजियाँ है, जो स्त्री के रोम-रोम में लगे तालों को खोलती है। तुम्हारी भावना अपने-आप तुम्हारी स्पर्श को स्त्री के लिए विशिष्ट, जीवंत बना देगी, लेकिन उसके साथ अगर कामकला का क्राफ्ट भी मिला हुआ हो, तो तुम दोनों के लिए अनिर्वचनीय सुख का दरवाजा खोल सकते हो।

तुम्हें शायद यह सुनकर हँसी आए कि मैं तीसरे भाग को सबसे महत्वपूर्ण मानती हूँ।"[3] कुमुद बोली, "मेरी दृष्टि में पुरुष की जिम्मेदारियों का सबसे संगीन दबाव यहीं से शुरू होता है। संभोग के बाद यह शैया-शैली का बहुत नाजुक मोड़ है। कुछेक अधम प्रेमी ऐसे होते हैं, जो 'कांक्वेस्ट' का इज्हारे-गुरूर करने लगते हैं। संवदेनशील प्रेमिका को चोट पहुँचाने वाला इससे गहरा वार दूसरा नहीं हो सकता। कुछ पतित प्रेमी ऐसे होते हैं जो करवट बदलकर खर्राटे भरने लगते हैं। उन नरपिशाचों को पता नहीं कि ऐसे स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित व्यवहार के लिए उन्हें रौरव नरक के 'निकृष्ट प्रेमी' सेक्शन में खौलते तेल की कड़ाही में डीप फ्राई किया जाएगा।"[4] ये आधुनिक चिंतन की नारी की भाषा है जो शारीरिक भूख को महत्व मानती है। यह भी सच है कि आदमी के पेट की भूख की तरह शरीर की भूख भी महत्वपूर्ण है।

आज की नारी पूरी तरह से मुक्त या स्वतंत्र है। फिर भी नारी, पुरुष समाज से डरती है। आधुनिक युग में नारी घर की चार दिवारों में न रह कर समाज में

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.59-60
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.60
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.63
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.63

अपना स्थान सुरक्षित करती है। लेकिन आज तक भारतीय परम्परा के अनुसार नारी-पुरुष पर आश्रित थी। उसका कर्तव्य केवल घर संभालना था परन्तु शिक्षा प्राप्त करके जाग्रत हुई। नारी घर के बारह भी समाज का अंग और महत्वपूर्ण नागरिक बन गई। "अत: उसका कर्तव्य अनेकाकार हो गया।"[1] घर की चार दिवारी से मुक्त हो कर उसने बाहर के विशाल क्षेत्र में प्रवेश किया। वह जीवन को अपनी दृष्टि से देखने में समर्थ हुई है। अब नारी का कार्यक्षेत्र विस्तृत हुआ है। परन्तु इस विस्तृत कार्य क्षेत्र के साथ उसके तनाव और व्यस्ताएँ भी बढ़ी हैं। जिस प्रकार विवेच्य उपन्यास में पारूल दो कंपनी की एम.डी. है फिर भी अपने पारिवारिक जीवन से खुश नहीं है। जयंत उसे शारीरिक कामवासना से तृप्त नहीं कर पाता था।

आधुनिक समाज में जिसके पास धन है वह भी पारिवारिक जीवन में अशांत है और जिसके पास धन नहीं है वह भी अशांत है। पारिवारिक जीवन के लिए धन के साथ-साथ शारीरिक संबंध भी जरूरी है। पारूल मुक्त थी। वह अपनी मर्जी से किससे मिल सकती थी और कुछ भी संबंध रख सकती थी। इसलिए वह नील से असामाजिक संबंध रखती है। पारूल नील को इतना प्यार करती है कि उस के लिए करवाचौथ का व्रत पालन करती थी। इसलिए पारूल कहती है कि – "आज करवाचौथ है। मैं तुमसे दूर कैसे रह सकती हूँ।"[2]

समाज में नारी और पुरुष की असामाजिकता की परम्परा तभी सृष्टि होती है जब स्त्री-पुरुष समाज के नियमों का उल्लंघन करें। इस प्रकार पारूल अपने प्यार को समाज में मान्यतस प्रदान करने के लिए सोचती हुई कहती है कि – "नील, देश छोड़कर भाग चलें?"[3] पारूल यकायक उसका हाथ कसते हुए विह्वल हो गई, "साउथ ऑफ फ्रांस मुझे बहुत पसंद है, पर वहाँ हम छिपे नहीं रह सकेंगे। मैस्किको या बोलीविया चले? मैं स्विस बैंक में पैसा जमा कर दूँगी... हम हजार एकड़ के फार्म में रहेंगे - दिन रात एक दूसरे के सामने। झील के पास हमारा विला होगा। सुबह एक दूसरे की बाँहों में सोकर उठेंगे। घोड़े दौड़ाते हुए दूर-दूर तक अपनी

---

[1] भारतीय समाज में कार्यशील महिलाएँ – डॉ. सुलोचना श्रीहरी देशपाण्डे, पृ.231.
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.161
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.161

फसल का मुआयना करेंगे। मैं झील से तैरकर निकलूँगी, तो तुम मुझे तौलिए से सुखाओगे। फिर हम वहीं ऊँची-ऊँची घास पर प्यार करेंगे.... तीन बच्चे पैदा कर लेंगे। हमें किसी का डर नहीं होगा।"[1]

"यहाँ हमारे रिश्ते का कोई भविष्य नहीं।"[2] पारूल ने कहा। क्योंकि यहाँ मैं शादी शुदा औरत हूँ और तुम बाजार के पुरुष हो। नील कहता है कि "थोड़ा हो सकता है, अगर तुम संयम से काम लो।"[3]

"मैं संयम से बेजार हो चुकी हूँ... लक्ष्मण रेखा के दूसरे ओर खुशियाँ अपना आँचल फैलाए खड़ी हैं।"[4]

"तुम्हें लक्ष्मण रेखा के भीतर भी खुशियाँ मिल सकती हैं।"[5]

"मैं दिन और रात तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ। मैं उगता हुआ सूरज और डूबता हुआ चाँद तुम्हारी बाँहों में देखना चाहती हूँ... मैं अब और घड़ी की सुइयों से डरते हुए प्यार नहीं कर सकती।"[6]

नारी अपने प्रेम को बरकरार रखने के लिए दूसरी नारी को भी धोखा देती है। क्योंकि उसके अँधरे के रिश्ते को कोई पकड़ न पाये। इसलिए पारूल कहती है कि –"नलिनी के साथ तुम्हारी शादी कर दूँ?"[7] "तुम दोनों को अपने ही घर में रख लूँगी। जयंत मेरी यह शर्त मान जाएगा... समाज में हमें एक पर्दा मिल जाएगा।"[8]

हमारे समाज में सैक्स एक रोग है। लॉरेन्स ने उसको दिमागी 'सेक्स' (Sen in head) कहा है जिसकी बड़ी निन्दा भी की है। यह दोष उसने बुद्धिजीवियों में देखा है। इस प्रकार पारूल अपने ऑफिस में नील से लिपट जाती है। वह नील को देखती

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.171
[2] - वही - पृ.171
[3] - वही - पृ.172
[4] - वही - पृ.172
[5] - वही - पृ.172
[6] - वही - पृ.172
[7] - वही - पृ.172
[8] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.172

है तो पारूल के अंदर की कामवासना जाग्रत होने लगती है। इसलिए वह आवेग से नील को चूमते हुएकहती है कि – "मैं मछली की तरह तड़प रही हूँ... रात-रात भर नींद नहीं आती..."[1]

"…. मेरे चाँद …. मेरे चैन….."[2]

4.1 विवाहेतर संबंध

विवाह के बाद पति और पत्नी के संबंध को पवित्र माना जाता है। पति और पत्नी तत्त्व का सम्मिलन ही सृष्टि का उन्मेष है। आदिमानव से अधुनातन समाज संगठनों तक विविध सामाजिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक विचारधारा, सतत विकास मान रही है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका पति और पत्नी के रूप में स्त्री और पुरुष की रही है। पति और पत्नी का यह दाम्पत्य भाव विवाह और परिवार की मूलधारा रही है। पति-पत्नी का सहचर्य चाहे श्रम के विभाजन के आधार पर माना जाए, चाहे काम की स्वाभाविक प्रवृत्ति के आधार पर किन्तु यह सहचर्य परिवार निर्माण की आधारशिला है जिसका चलना एक दूसरे के सामंजस्य पूर्ण विश्वास पर निर्भर रहता है।

पति-पत्नी के रिश्ते की पवित्रता और गहराई भी एक बीते हुए अतीत की कहानी बन कर रह गयी है। आज वह कहानी नूतन रूप धारण कर महानगरों में चारों ओर से अपने पैर फैला रही है।

साधारणतः जीवन में सुख-समृद्धि, सम्पन्नता एवं स्वाभाविकता होनी चाहिए। इन दोनों के पारस्परिक सहयोग एवं सद्‌भाव पर आधारित है, जीवन के विकास का आधार यही संबंध है। पति-पत्नी के संबंधों में जरा-सी कटुता समस्त वातावरण में कटुता भर देती है। इस प्रकार की परिस्थिति गाँवों में नाम मात्र को है। लेकिन शहरों में इसी संबंधों में कटुता का परिणाम है तलाक।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.186
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.186

विवाह के बाद पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों में एक नई स्थिति उस समय उपस्थित होती है जब उनके वैवाहिक जीवन में किसी तीसरे प्रेमी अथवा प्रेमिका का आगमन होता है। प्रेम की त्रिकोणात्मक स्थिति पारस्परिक संघर्ष में परिवर्तित हो जाती है और आकर्षण विकर्षण में बदल जाता है। सुरेन्द्र वर्मा के विवेच्य उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में नील पारूल को देखते ही सोचने लगता है कि – "अगर विवाह स्वर्ग में संयोजित होते हैं, तो कम से कम पारूल के लिए यह पद्धति गलत है।"[1] एक पल नील की निगाह पारूल से मिल गयी। उनकी मोनालिज़ा-मुस्कान में एक और अर्थ कसमसा रहा था – व्यग्र उदासी का। पारूल और नील का प्यार धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। ये रिश्ता नाजायज संबंध था क्योंकि पारूल पहले से शादी-शुदा औरत थी।

पारूल का स्पर्श करते हुए नील ने महसूस किया कि – "जैसे सोखो पर स्याही की बूँद फैलती जाती है।"[2]

पारूल ने तिरछी निगाह से उसे देखा.. वह दृष्टि कैसी थी…सीने में तीर चुभोए क्रौंच पक्षी की तरह असहाय और कातर…।

"तुम्हें यहाँ बुला तो लिया।"[3] पारूल ने घूट-सा भरा, "अब समझ नहीं आ रहा, क्या कहूँ…"

"कुछ कहने की जरूरत नहीं।"[4] उसने दूसरे कंधे पर हाथ रख पारूल को सीधा किया। अब चेहरा उसके बिलकुल सामने था…..।

पारूल कहती है कि –"जब मैंने तुम्हें स्टडी में अकेला देखा था… तभी मुझे डर लगा था कि आज का यह पल आएगा…"[5]

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.105
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.120
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.120
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.121
[5] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.122

साधारतः स्त्री शादी के बाद ही सिन्दूर लगाती है। वह भी सिर्फ अपने पति के हाथ से। लेकन पारूल अपने पति के होते हुए प्रेमी से भी माँग भरने को कहती है। ये महानगर में अजीब संबंध नारी-पुरुष के बीच चल रहा है। देह जैसे सौन्दर्य की दीपशिखा थी – हवा के झोंके में थरथराती हुई। चपल। कमनीय।

"मेरी माँग भर दो।"[1]

यकायक ठिठककर पारूल ने उसके हाथ बढ़ा दिया था। वह स्तब्ध रह गया। फिर चुटकी भर सिंदूर से उसकी माँग भर दी।

"मैं कब से इतज़ार कर रही हूँ नील!"[2] नए मांस सरोवर ने बाहें फैलाए आह्वाहन किया।

"कितना आनंद देते हो तुम...।"[3] पारूल फुसफुसाई। पारूल अपने बीते हुए जीवन की कहानी याद करते ही उसकी आँखों में आँसू आ गए। बोली "मैंने तन-मन की कितनी यंत्रणा सही हैं, मैं तुम्हें शब्दों में बता नहीं पाऊँगी। मैं जैसे जलते रेगिस्तान में जी रही थी... मेरा तीन-चौथाई हिस्सा मुर्दा था... आधी रात को यकायक मेरी नींद टूट जाती, तो बाहर लहरों की गरज के साथ मैं सोचती, मैं क्यों जिंदा हूँ? मेरे जीवन का अर्थ क्या है?"[4]

प्रेम क्या होता है, तुमसे मिलने से पहले मैं नहीं जानती थी। पारूल की कामवासना की तृप्ति हो जाती है तब उसे प्रेम का अर्थ समझ में आता है। साधारणतः परिवार में सिखाया जाता है कि प्रेम ब्याह के बाद करते हैं और वह भी सिर्फ पति से।

आज विवाहिता पुरुष अविवाहित स्त्री के साथ, अविवाहित स्त्री विवाहित पुरुष के साथ, अन्य स्त्रियों के साथ भी कामपरक इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्यार का मुखौटा पहनते हैं। जैसे पारूल, पति होने के बावजूद अपने प्रेमी नील से

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.136
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.136
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.136
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.137

अपनी उत्तेजित काम इच्छाओं को पूरा करना चाहती है। इसलिए वह कहती है कि – "यहाँ हमें हमेशा जल्दी रहती है।" हम पूरी तरह एक दूसरे में डूब नहीं पाते।"[1]

"थोड़ा कोशिश के साथ यहाँ ऐसा हो सकता है।"[2]

पारूल शादी शुदा अपने पति जयंत के बावजूद अपने प्रेमी से गहन रूप से प्रेम करती है। क्योंकि अपने पति जयंत द्वारा उसकी कामवासना तृप्त नहीं हो पाती है। वह अपने प्रेमी नील के लिए समाज की मर्यादा को भी तोड़ने के लिए पिछे हटती नहीं है। इसलिए वह कहती है कि – "मुझे यह बच्चा चाहिए।"[3] "मैं भावात्मक रूप से तुम्हारी पत्नी हूँ।" "इस देश का कानून ऐसा रिश्ता नहीं मानता।"[4] "मैं मानती हूँ।"[5]

आधुनिक युग की नगर सभ्यता में नारी पुरुष का सामूहिक मिलन आर्थिक विषमता, सामाजिक असंगतियाँ, पुरुष की वासना में प्रवृत्ति आदि भी विवाहेतर संबंधों की समस्या के कारण हैं। विवाहेतर संबंध के कारण पारिवारिक मर्यादा पर कलंक लग जाता है। जैसे पारूल और जयंत के परिवार में हुआ है।

इसी प्रकार शिल्पा एक सुहाग चिह्नों से शोभित और भरीपूरी गृहस्थी से दीप्त अधेड़ स्त्री है। वह अपनी जटिल कामनाओं की तृप्ति के लिए विवाहेतर संबंध रखती है। शिल्पा अपने शरीर की तृप्ति के लिए अपने पति को बंगलौर की आखिरी फ्लाइट पर छोड़कर आती है। क्योंकि काम तृप्ति में बाधा न डाले। लेकिन शिल्पा का पति देख लेता है और कहता है कि – "कब से चल रहा है यह सिलसिला?" "एक मरद काफी नहीं है तेरे लिए?"[6] … गू की ढेरी में मुँह मारते बच्चों के बारे में नहीं सोचा?"[7]

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.138
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.138
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.210
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.210
[5] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.210
[6] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142
[7] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142

शिल्पा बोलती है कि "मेरी अपनी भी जरूरतें हैं।"[1]

यहाँ पता चलता है कि अपनी जरूरत से ज्यादा शरीर की भूख है। जो अपनी अंदर की कामुकता को या यौन संबंध को महत्व देते हैं।

ब्लॉसम विधवा अधेड़ स्त्री है। जो सात वर्ष पहले विधवा हो गई। ब्लॉसम बालों में हाथ फेरते हुए स्नानगृह से निकली उसने एक बड़ा तौलिया लपैट रखा था। निकट आते हुए निगाह मिलने पर वह किंचित आत्मसजग ढंग से मुस्कुराई।

आधुनिक युग में विवाहित पुरुष अविवाहित स्त्री के साथ, अविवाहित स्त्री विवाहित पुरुष के साथ, अन्य स्त्रियों के साथ भी कामपरक इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्यार का मुखौटा पहनना, एक दूसरे की नि:सहाय स्थिति से फायदा उठाने का प्रयास, कलुषित पाश्चात्य सभ्यता आदि के कारण से स्त्री-पुरुष के संबंध कुरूप बन रहे हैं। नारी को भोग्य वस्तु मानकर कामुकता की प्यास बुझाने, आज पुरुषों के लिए मुख्य विषय है। वैसे ही स्त्रियों में भी कई प्रकार की परिस्थितियों के कारण कामुकता की इच्छा ज्यादा होने के कारण अपना अस्तित्व खो बैठती हैं और अनैतिकता की खाई में गिर रही है। इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा के इस विवेच्य उपन्यास में पारूल, शिल्पा, शिल्पा, ब्लॉसम, यास्मीन, आदि स्त्रियों में कामुकता की इच्छा ज्यादा होने के कारण विवाह के बाद भी दूसरे पुरुष से यौन संबंध हैं जो समाज में असामाजिक हैं।

हमारे समाज में विवाह एक बंधन है। विवाह के बाद नारी स्वतंत्रता खो कर बंधनों में जकड़ जाती है। विवाह के बाद पत्नी को सब कुछ सहना पड़ता है। ये भारतीय परम्परा के रीति-रिवाज हैं। लेकिन महानगरों में विवाह के बाद पत्नी स्वतंत्र रूप से विवाहेतर संबंध रख सकती है। साधारणत: विवाहेतर यौन संबंध नारियाँ उन्हीं लोगों के साथ रखती हैं जो अमीर व दौलतमंद हों। लेकिन विवेच्य उपन्यास में सुरेन्द्र वर्मा ने अलग ढंग से वर्णन किया है। जहाँ अमीर घर की विवाहिता स्त्रियाँ अपनी काम वासना तृप्ति के लिए गरीब व बेकार पुरुषों के साथ विवाहेतर संबंध

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142

रखती हैं। जैसे पारूल, शिल्पा, यास्मीन आदि महिलाएँ विवाहेतर संबंध से अपनी कामवासना को तुष्टि करती हैं।

भारतीय सभ्यता में नारी चाहे कितना महान त्याग करे फिर भी पुरुष नारी के प्रति निर्दय ही होता है। भारतीय सभ्यता में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव के कारण नगरों में विवाहेतर संबंध दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। परम्परागत मूल्य मिटते जा रहे हैं।

4.2 पारिवारिक विघटन

प्राचीन काल से हिंदू समाज का प्रमुख आधार परिवार को ही माना जाता है। परिवार एक विशेष सामाजिक संस्था है। जिसका स्वयं अपना एक पेचीदा ढाँचा है। जिसमें रक्त संबंध, भौतिक, आर्थिक संबंध तथा बौद्धिक संबंध शामिल हैं। रक्त संबंध के अंतर्गत माँ-बाप, बच्चे, भाई, और बहन आदि होते हैं और वैवाहिक संबंध में पति-पत्नी होते हैं। परिवार वृहद् समाज की शांति उसका संघठन सदस्यों के नियमबद्ध संबंधों और पारस्परिक अंतक्रियाओं पर निर्भर करता है। जब इन संबंधों में तनाव की स्थिति आ जाती है या पारस्परिक प्रभाव समाप्त हो जाता है या इस प्रकार की व्यवस्था उत्पन्न हो जाती कि परिवार में असामंजस्य की स्थिति आ गयी तो परिवार में संगठन के स्थान पर विघटन की स्थिति लक्षित होती है। मनुष्य का जन्म विकास व्यक्तिगत गुणों तथा संबंधों का निर्माण परिवार में होता है। व्यक्ति गुणों तथा संबंधों के अंतर्गत प्रेम, बंधुत्व एक-दूसरे की देख-रेख नैतिक जिम्मेदारी और आती है। पहले संयुक्त परिवार की प्रथा थी। परन्तु अर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों तथा आधुनिक विचारों के कारण संयुक्त परिवार की परम्परा विघटित हो गयी। परिवारों के विघटन के साथ समाज में बदलते संबंधों में भी परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में समझ नहीं। एक गहरी खाई दिन-पर-दिन बनती जा रही है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच प्रेम का संबंध न रह कर ईर्ष्या, द्वेष, अहम् आदि कुभावनाएँ जाग्रत हो रही हैं जिसके फलस्वरूप आज मानवीय संबंधों में विघटन दिखाई पड़ रहा है।

आधुनिक युग में शिक्षित लोग ही जातिवाद को ज्यादा महत्व देते हैं। विवेच्य उपन्यास में डॉ. शर्मा जैसे लोग शिक्षित होने पर भी समाज के भय से वह अपनी बेटी को कायस्थ खानदान में नहीं देना चाहते हैं। वह कहते हैं कि –" कायस्थ को बेटी दे कर हमें खानदान की नाक कटवानी है?"[1]

नील और किरन के प्यार के कारण डॉ. शर्मा के परिवार में पारिवारिक विघटन होता है।

आज के आधुनिक युग में परिवार अपनी सारी शक्तियों के साथ संक्रमणशील स्थितियों के बीच से गुजर कर टूट-टूट कर छोटी-छोटी ईकाइयों में विभाजित हो रहे हैं। आदर्शों, मूल्यों एवं परम्पराओं के स्खलन से परिवार की व्यवस्था एवं संगठन टूट रहा है। संबंधों के बदलाव से पारिवारिक जीवन अशांत एवं कलहपूर्ण हो गया है। उसकी सामूहिकता नष्ट हो रही है।

आधुनिक नागरीय समाज धनतंत्र पर आधारित है। यह संबंध अर्थ से परिचालित है। व्यक्ति के जीवन विचार पर अर्थ हावी है। इसलिए भारतीय महानगरों में संबंधों का विघटन परिलक्षित होने लगा है। जैसे नील अपने स्वार्थ के लिए पारूल से प्रेम संपर्क रखता है। लेकिन पारूल नील को अपना पति मानती है। परन्तु पारूल का ब्याह जयंत के साथ पहले हो चुका था। नील अपने स्वार्थ के लिए पारूल को मोहरा बना कर जयंत के पारिवारिक जीवन संबंधों में विघटन या बिखराव की सृष्टि करता है। इसलिए जयंत नील से कहता है कि – " जिस दिन तुम हमारे घर की पार्टी में आए थे, उसी दिन पारूल ने मुझसे ज़िद की थी कि वह अलग रहना चाहती है...।"[2] हफ्ते भर के भीतर उसमें सुहानी तब्दीलियाँ दिखने लगीं...।"[3] यकायक वह अटका। आगे जो कहने जा रहा था, उसे रोक लिया। कुछ पलों के बाद सधे हुए ढंग से जोड़ा, "मेरा तुमसे एक ही आग्रह है, उससे 'डिस्क्रीट' होने के लिए कहो। टाउन में तुम्हें बगल में बैठाए घूमना, होटलों में हमारे बगल में तुम्हारे लिए कमरा बुक

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.10
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.164
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.164

करवाना, ज्यादा घंटों के लिए ऑफिस या घर से गायब हो जाना ये बातें गलत हैं। यह मैट्रोपोलिस हमारे जैसे लोगों के लिए गाँव की तरह है। उसे समझओं कि सी-ब्रीज या नेबुला में घुसे रहना ज्यादा सुरक्षित है।"[1]

"मुझे नहीं मालूम, तुम मेरे बारे में कितना जानते हो।" अब ज्यंत उसकी ओर देखने लगा था, "पर मैं कुछ बातें साफ कर देना चाहता हूँ। मेरी व्यक्तिगत जरूरतें बहुत कम हैं। फिर मुझे डायबिटीज, हाई ब्लडप्रेशर और हार्टट्रबुल भी है। मेरी जिंदगी का एक ही पैशन है मेरा काम।"[2]

जयंत ने अपने पारिवारिक संबंधों को सही सलामत रखने के लिए जेबसे एक बंडल निकालकर नील के हाथों में रखते हुए आवेग से कहा, "मेरा घर न टूटे, इसके लिए मुझे तुम्हारी मदद चाहिए।"[3]

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने इस विवेच्य उपन्यास में महानगरों में रहने वाले लोगों के पारिवारिक विघटन को बड़ी प्रामाणिकता से चित्रित किया है। जैसे शिल्पा और उसके पति के बीच नील तीसरा आदमी के रूप में घुस कर दाम्पत्य जीवन में संबंध को विघटित करता है।

आज यह पारिवारिक विघटन क्या बड़े और क्या छोटे, क्या ऊँच और क्या नीच सभी परिवारों में अपने पैर फैलाने लगा है। विवेच्य उपन्यास में रहने वाले पूँजीपतियों के परिवार के साथ समाज में रहने वालों के परिवार समान रूप से टूट रहे हैं। पारिवारिक विघटन के मुख्य कारण इस उपन्यास में दो दिखाई पड़ते हैं, प्रथम समस्या है आर्थिक परिस्थिति। दूसरी कामवासना की तृप्ति के लिए पारिवारिक विघटन।

जब नील अपनी माँ से कहता है कि वह नैन से प्यार करता है। उसकी माँ गुस्से से कहती है कि – " सिर्फ नैन नहीं.. की सिर्फ पारूल.... यास्मीन, कृष्णा, सौदामिनी तेरी डायरी तो नामों अटी पड़ी है... जी चाहता है, धरती फट जाए और

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.164
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.164
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.165

मैं जीते जी उसमें समा जाऊँ... दुनिया में किसी माँ की कोख पर ऐसी कालिख नहीं लगी होगी...."[1]

"यह क्या तमाशा है?"[2] अपराध व शर्म की गहनता से वह खीझ गया।

"इसी दिन के लिए तुझे पाल पोसकर बड़ा किया था?"[3] माँ की आँखों में जलन भी थी और नमी भी। "ऊपर जाने पर तेरा बाप पूछेगा, तो क्या जवाब दूँगी?"[4] नील का पेशा ऐसा था कि जो माँ और बेटे के रिश्ते में बिखराव पैदा कर देता है।

हम देखते हैं कि पारिवारिक विघटन केवल पति-पत्नी के मध्य तनावों तक ही सीमित नहीं है। बल्कि परिवार के किन्ही भी सदस्यों के संबंधों के टूट जाने में भी है। पारिवारिक विघटन एक प्रकार से सामाजिक विघटन का ही रूप है। वर्तमान युग में विभिन्न विसंगतिपूर्ण परिस्थितियों के चलते नगरीय समाज का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है। मानवीय संबंधों को बनाए रखने वाले मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप उन संबंधों का भी विघटन हो रहा है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि महानगरों का विकास जहाँ एक तरफ मनुष्य के सभ्य होने का परिचायक है, मानसिक स्तर तथा भौतिक उन्नति का प्रतीक है वहीं दूसरी तरफ महानगरों में विभिनन परिस्थितियों के चलते सामाजिक अव्यवस्था तथा पारिवारिक संबंधों का विघटन आदि भयंकर रूप धारण करने में भी है।

संसार में मनुष्य को जीवित रहने के लिए यदि भूख और प्यार की तृप्ति अपेक्षित होती है तो सुखद और शान्तिपूर्ण जीवन यापन के लिए कामेच्छा की संतुष्टि भी आवश्यक होती है। पेट की भूख के समान कामतुष्टि की भूख भी मनुष्य को अत्यधिक व्याकुल करके उसकी मानसिक रुग्णता, सामाजिक अराजकता और पारिवारिक विघटन का कारण बन बैठती है। पति-पत्नी के अस्वस्थ संबंध और

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.204
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.204
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.204
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.204

पारिवारिक अशांति अथवा सामाजिक नैतिकता के उल्लंघन की कीमत पर कामतुष्टि का निर्वाह। दाम्पत्य जीवन की असफलता से उत्पन्न काम-कुण्ठा और मूल्य संकट का ही अधिकतर चित्रण उपन्यासों में मिलता है। क्योंकि यौन-नैतिकता की दृष्टि से हमारे यहाँ केवल दाम्पत्य संबंध को ही स्वीकृति मिली हुई है। अत: दाम्पत्य जीवन संबंधी यौन समस्या का ही खुलकर चित्रण हिन्दी उपन्यास साहित्य में भी किया गया है। इस उपन्यास के जितने भी नारी पात्र हैं वह सब कामेच्छा की तुष्टि के लिए अपने पारिवारिक जीवन में विघटन का कारण हैं।

आधुनिक युग में फैशन पारिवारिक संबंधों में विघटन पैदा करता है। फैशन परिवर्तन होने के कारण उसमें सौन्दर्य प्रसाधनों का इस्तेमाल भी किया है। जिससे वह अधिक मांसल और सुन्दर लगने लगती हैं। आर्थिक अीाव और भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए उसे घर की चहार दीवारी से निकलकर मुक्त आकाश में आना पड़ता है। जहाँ इनकी आँखें चार भी होती हैं और चटपटी बातों का स्वाद भी मिल जाता है। इससे पत्नियों में उनके पतियों की कमजोरियाँ मालूम होती हैं। और पतियों का शक बढ़ जाता है। पति को लगता है उसकी पत्नी जिस किसी से भी हँस कर बोलती है उसके साथ उसके नाजायज संबंध हैं।

डॉ. सुशील मित्तल ने कहा है कि –" आज एक विशिष्ट वर्ग में पत्नी के पति के प्रति निष्ठा की बात उतनी आवश्यक और महत्वपूर्ण नहीं रह गयी है, जितनी अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की तृप्ति का प्रश्न।"[1] पारूल और नील का सम्पर्क है। जब पारूल नील एक साथ घूमते, मिलते हैं उसको देख कर जयंत के मन में आशंका होती है।

इस प्रकार हम विवेच्य उपन्यास में पारिवारिक विघटन को देख सकते हैं।

4.3 हत्या

हत्याओं के सुपारी-युग में जीना महानगरों की नियति बन चुकी है। नगरीकरण के कारण व्यक्ति तथा सम्पत्ति के विरुद्ध अपराधों की संख्या में तेजी से

[1] आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ – डॉ. सुशील मित्तल, पृ.186

वृद्धि होने लगी है। ऐसे अपराधों में बलात्कार, अपहरण, चोरी, डकैती, धोखाधड़ी, मारपीट तथा हत्या की वारदातें आदि सभी सम्मिलित हैं।आज बड़े-बड़े नगरों में आये दिन हत्या की वारदातें समाचार-पत्र व दूरदर्शन आदि के द्वारा पता चलती हैं। मुम्बई जैसे महानगर में तो किसी की हत्या एक सामान्य घटना बनती जा रही है। आज का युग हत्याओं के सुपारी का युग है। जहाँ कुछ रुपयों के एवज में किसी की भी हत्या की सुपारी दी जाती है। बदलते परिदृश्य ने लूट-खसोट, स्वार्थपरता आदि के साथ-साथ हत्याकांड को भी जन्म दिया।

आज जिसके पास धन की ताकत है वह माफिया-तंत्र से अपना रिश्ता जोड़ लेता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर किसी का अपहरण या किसी को अपने रास्ते से हटाकर सरगना बन जाए।

आधुनिक समाज में जहाँ एक तरफ मनुष्य विज्ञान एवं तकनीकी विकास की सहायता से व्यक्ति की उम्र को बढ़ाने की सफल कोशिश में लगा है तथा मनुष्य आज सुख सुविधाओं को अपनी मुट्ठी में करने में सफल हो रहा है वहीं दूसरी ओर अपनी स्वार्थपरता के वशीभूत होकर उस अमूल्य जीव को नष्ट करने में उसे थोड़ा भी संकोच नहीं है। आज चारों ओर अराजकता एवं आतंक फैला हुआ नजर आता है। नगरों में लोग बाहर निकलते ही भय से आक्रान्त होने लगते हैं कि आज वह सही सलामत घर वापस लौटेंगे या नहीं। भोला अंडरवर्ल्ड में शामिल हो कर भाइयों के साथ मिल कर नगर में हत्या करता रहता है। जो नगर की आम बात है। लेकिन हत्या के बाद भोला का मन परिवर्तित हो जाता है। इसलिए भोला, नील से कहता है कि – "मैंने कैसे-कैसे अपराध किए हैं और उनके कैसे-कैसे नतीजे निकले हैं।"[1] मैं गफूर का भागीदार था, जब यूनियन नेता को ठिकाने लगाया गया। उसके घर में फाकों की नौबत आ गई। उसकी जोरू ने दो बच्चों के साथ कीड़े मारने की दवा पीकर दुनिया छोड़ दी। जवान ननद भी इस समझौते में शामिल थी, पर नसीब की मार, वह बच गई। ...अभी सुना, वह रातरानी में नंगे नाच की नौकरी पर लग गई है

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.156

– शालू की जगह। ... एक ईमानदार आदमी का हँसता-खेलता कुटुंब हमारे हाथों उजड़ गया। उसकी आह नहीं लगेगी क्या?"[1]

"कल के दिन मुझे कुछ हो गया, तो शालू फिर उसी गटर में वापस चली जाएगी? और मुझे कुछ-न-कुछ तो होगा ही। जल्दी अगर मरूँगा नहीं, तो जेल तो जाना ही पड़ेगा।"[2]

इस प्रकार भोला नील के सामने अपने मन की बात कहता है। "और मुझे देखो, मथुरा में भांग के आगे किसी चीज़ का हाथ नहीं लगाया। यहाँ कौन-सा नशा है, जो मुझसे छूटा हो? एक दिन मांस न मिले, तो मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है.. कैसा पतन हो गया है मेरा...।"[3]

भोला और गफूर दोनों मिल मालिक के कहने पर यूनियन नेता का कुटुंब उजाड़ने की जिम्मेदारी लेते हैं और उस कार्य को पूरा भी करते हैं। लेकिन नगर की पुलिस कुछ नहीं कर पाती। क्योंकि इन लोगों के पीछे राजनीतिक नेता, पुलिस और पूँजीपतियों का हाथ रहता है। महानगरों में हत्या कभी दिन में या कभी रात में सबके सामने होती है। लेकिन पुलिस कातिल को पकड़ने में असफल रहती है।

हमारे समाज में राजनीति में ही हत्या ज्यदा होती है क्योंकि राजनीति लोगों के मन में ईर्ष्या पैदा करती है। साधारणत: राजनीति में जगह से ज्यादा एजेंट होते हैं। जो कुशल भी हो और विश्वासी भी। इसलिए नेता एजेंट के जरिए पूरी जगह को खरीद सकता है। इस में कोई विरोध करता है तो उसे रातों-रात, सुपारी दे कर मरवा दिया जाता है जिससे कातिल को पकड़ना मुश्किल हो जाता है।

जब कोई अंडरवर्ल्ड में शामिल होता है तो उससे निकलने के लिए कोई रास्ता नहीं मिलता। इस दुनिया में एक ही रास्ता है 'मौत'। इस दुनिया में विश्वासघात सबसे बड़ा पाप माना जाता है। विश्वासघाती को ऐसी सजा देते हैं जो

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.156
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.156
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.157

बाद में भी कोई ऐसा करने का साहस नहीं करेगा। अंडरवर्ल्ड के भाइयों के बीच नजीर बोला – "बन्ने, जुम्मन का नाम बता दे। बन्ने नीचे देखता रहा।"

"अब मैं बताऊँ?" नजीर बोला, "रियाज के साथ तू लैडिंग के लिए चला। घोड़बंदर रोडसे जेसे ही गाड़ी नवरंग सिनमा को मुड़ी, तू समझ गया कि लैडिंग वर्सोवा पर होगी। नवरंग के सामने एम्बेसडर लिये शकील नहीं मिला, तो रियाज उतर गया कि वह दो मिनट रुकेगा और शकील के साथ आ जाएगा। जैसे ही गाड़ी मनीष मार्केट पहुँची, तू दस्त का बहाना बनाकर उतर गया और बोला कि तू रियाज़ के साथ आ जाएगा। फिर तूने एक फोन किया और लैडिंग की जगह बना दी।"[1]

"अब मैं वो नाम बताऊँ, जिसे तूने फोन किया था?... पर नाम बताना बेकार होगा, क्योंकि जुम्मन का नाम तो तू जानता ही नहीं।"[2]

"नजीर बोला, पहले नाक काटूँ कि कान?"

नजीर के बदन में हरकत हुई और बन्ने की चीत्कार के साथ भोला ने देखा कि उसकी नाक के ऊपरी सिरे पर खून की मोटी लकीर उभर रही है। बन्ने का मुँह पीड़ा और भय से विकृत हो गया। फिर देखते-देखते लाल बूँदे उसके गाल पर बहने लगीं, नीचे टपकीं और कमीज के दामन को रंगने लगीं।

इस प्रकार बन्ने पच्चीस हजार के लिए अपने भाइयों से विश्वासघात करता है। इसके लिए उसकी कान और नाक काट कर अंत में हत्या कर देता है।

इम्तियाज के ऊपर एक कत्ल का, एक तस्करी का और एक काफीसॉप का मुकदमा चल रहा था। उसके नाम दो साल से वारंट निकला हुआ था, पर सम्मन की तामील नहीं हो पाई थी। इसलिए इम्तियाज बंबई छोड़ कर जा रहा था। लेकिन वह जा नहीं पाया पुलिस गोली में उसकी हत्या हो गयी।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.196
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.196

किट्टू के विश्वासघात से इलियास भाई की मृत्यु और भोला को जेल हो गयी। बंबई अंडरवर्ल्ड के भाइयों की मृत्यु के बाद किट्टू भोला से कहता है कि –"तू सचमुच का भोला है!"[1] "मैं बेवकूफ हूँ , जो अपनी गर्दन खतरे में डालूँगा? रुस गैंग में अब है कौन ? यहाँ की सारी ताकत खतम हो गई।"[2]

जब मुर्तजा को यह पता चला कि किट्टू ही इम्तियाज, इलियास भाई का गुनेहगार है। इसलिए वह किट्टू का दायाँ हाथ कलाई के सहारे थाम रखा। दो उँगलियों में किट्टू की जानी-पहचानी दो अँगुठिया झलकीं एक सोने की एक चाँदी की। कंधे वाला हिस्सा नीचे था। जिससे खून टपक रहा था, किट्टू को मारते हुए मुर्तजा अपनी दोस्ती के बारे में सोचता है कि इस दुनिया में किट्टू ने ही पहले पैर थामा। बाद में वह मुझे इलियास से मिलाने ले आया था। इलियास के नज़दीक आने में मुझे ज्यादा वक्त नहीं लगा। वह हवाला के बड़े पेमेंट के लिए मुझे भेजने लगे। यहीं से किट्टू के दिल में गाँठ पड़ गई.... पर क्या मुझे ख्वाब में भी ख्याल था कि यह इस हद तक जा सकता है?"

भोला ने बिजली सी चपलता से उसकी बाँह पर प्रहार किया, तो उसकी एलडियोल 38 पंजे से छिटक गई। किट्टू ने लड़खड़ाते हुए उसके पेट में घूसा मारा, पर लगभग साथ-साथ भोला का तीखा दोहत्थड़ उसके जबड़े पर पड़ा। नीचे गिरे किट्टू की कमर पर एक पाँव जमाते हुए भोला ने उसकी दाई बाँह मोड़ी, तो किट्टू की बाँह की हड्डी जोड़ पर चरमरा गई। उसके अंगद पाँव के नीचे किट्टू सीधा होने को छटपटा रहा था...

"मैंने तुझे दोस्त समझा था बेईमान..."[3] साँसों को तोड़-तोड़कर किट्टू ने कहा।

"तुम्हारे मुँह पर यह शब्द शोभा नहीं देता।"[4]

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.227
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.227
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.229
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.229

किट्टू ने न जाने कैसी उछाल ली कि भोला उसके समानांतर आ गया। उसके पेट पर आधा चढ़ा हुआ किट्टू लगातार घूँसे बरसा रहा था। भोला ने उसका गला कस लिया। अंदाज-सा था कि साँस की नस कौन-सी होती है।

जीवन न बयिहौं हम सों जु बिना सुधि लाए इहाँ पशु धारौ... मन ही मन जपता हुआ भोला भरसक अपना शिकंजा कसता गया। कुछ पलों बाद किट्टू के प्रहार अशक्त हुए। भोला ने हाथ छोड़े बिना करवट ली, "नराधम, ये ब्रज का घी-दूध पिये हुए हाथ हैं, बटाटा बड़ा और सिंगल चाय पर पला, ऐयाशियों से खोखला तेरा पिंजर पवनपुत्र के लंगोट पक्के भक्त से क्या टकराएगा..."[1]

जब किट्टू ने भोला के अपराधों का जोड़ा लगाकर मुसकान से बताया था कि अगर भोला गिरफ्तार हुआ, तो उसे कम-से-कम तेईस बरस की सजा मिलेगी। तब उन दोनों को सपने में भी गुमान न था कि अपराधों में किट्टू की हत्या भी जुड़ने वाली है?

जब नील के प्यार ने सोमपुरिया सेठ के परिवार की मर्यादा को तोड़ दिया तो नीवन सोमपुरिया सेठ ने सुपारी दे कर नील को मार डाला।

महानगरों में अराजकता अधिक होती है। व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए दूसरे की जान लेने से भी पीछे नहीं रहता है। इस तरह हम देख सकते हैं कि महानगरों में मार-पीट, हत्याकांड आदि अधिक होते रहते हैं। बीसवीं सदी में यह समस्या तीव्र होती गयी है। इस स्थिति को रोकने के लिए सरकार का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। इसके पीछे सरकारी नेताओं का भी हाथ रहता है। खुद सरकार ही इन लोगों को बढ़ावा दे रही है। विवेच्य उपन्यास में भी माफ़िया, राजनैतिक नेता, पुलिस कर्मी के सहयोग से नगर में पनपता है।

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.229

4.4 आत्महत्या

मनुष्य समाज में रहते हुए भी खुद को समाज से अलग करता है या अपने आप में अकेला पड़ता जाता है। वह अजनबीयत, अकेलापन या आत्मकेन्द्रित हो जाता है तब आत्महत्या के लिए विवश हो जाता है।

भारत में हर साल लगभग साठ हजार लोग आत्महत्या करते हैं। लेकिन आत्महत्या का असफल प्रयत्न करने वालों की संख्या इससे आठ गुना ज्यादा होती है। अमेरिका, इंग्लैंड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया जैसे अनेक तथा कथित उन्नत देशों से ये आंकड़े बहुत कम हैं और जापान में तो बहुत ही कम। भारत अभी औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा है तथा आत्महत्या पाप है, जैसी धार्मिक भावनाओं से मुक्ति-अभियान की गति भी उसकी धीमी है। मतलब है जैसे-जैसे समृद्धि बढ़ेगी विघटन बढ़ेगा। जैसे-जैसे विज्ञानिक तर्क धार्मिक आस्थाओं को लीलते जाएँगे, नैतिक मूल्यों पर, शाश्वत मानवीय मूल्यों पर भ्रष्ट भौतिकतावादी मूल्य हावी होते जाएँगे। समाज और बिखंडित होगा, विघटन और बढ़ेंगे तथा आत्महत्याओं की दर में और वृद्धि होती जाएगी।

आत्महत्याओं के अनेक कारण गिनाए जाते हैं - जैसे गरीबी, बेकारी, असाध्य बीमारी, निकट संबंधी का वियोग, प्यार, परीक्षा या व्यवसाय में असफलता, गृह-कलह, मनोविकार आदि। इन कारणों से कोई आत्महत्या नहीं करता, जबतक कि इन स्थितियों में कोई आत्मीय उसे ढाढस बँधाने वाला है, सहारा देने वाला है या अन्याय का मुकाबिला करने उससे लड़ने और उसे झेलने की प्रेरणा देने वाला है।

अनिर्णय, अंधकार और टूटन की स्थिति में चारों ओर से बेहद निराशा-सा हो जाने पर, कुछभी न सूझने पर एकदम अकेला पड़ जाने वाला व्यक्ति ही ऐसा आत्मघाती कदम उठाने के लिए मजबूर होता है।

आज के आधुनिक युग में बड़े परिवार तो विघटित हो चुके हैं, छोटे परिवार भी विघटन की कगार पर हैं। व्यक्ति अधिक-से-अधक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। अपनत्व की ऊष्मा स्नेह का सहारा इसके लिए बीते युग की चीज़ हो गया है। संबंधों

और संदर्भों से कटे, भीड़ में भी अकेले पड़ गए व्यस्त हो कर भी संत्रास, आधुनिक कहे जाने वाले व्यक्ति की अंतिम नियति है आत्महत्या। यह नियति उनकी भी है जो आवेश में समाज विरोधी या अपने संस्कार विरोधी कदम उठा लेते हैं। विद्रोही हो कर भी वक्त या परिस्थिति का साहस से सामना नहीं कर पाते।

आज के महानगरों में हत्या, आत्महत्या मामूली जैसी हो गयी है। इसके पीछे सामाजिक दबाव का हाथ रहता है। जब आदमी समाज से घृणित, पारिवारिक संबंधों से संघर्ष करते-करते शारीरिक और मानसिक थकावट, दुर्बलता और बेहद अकेलापन अनुभव करता है तो अंतिम लक्ष्य आत्महत्या हो जाती है।

आजकल हमारे समाज में शिक्षा भी आत्महत्या का एक मुख्य कारण बन रहा है। नगर, शहर और गाँव के बच्चे परीक्षा के लिए संघर्ष करते रहते हैं। विवेच्य उपन्यास में गौतम कहता है कि –"तुम सात-आठ साल में खून के आँसू बहाते हुए पीएच.डी. हो भी गए तो नौकरी कौन देगा? यह रास्ता या तो तुम्हें आत्महत्या तक ले जाएगा या पागल खाने तक।"[1]

"अतृप्त, दु:खी स्त्रियों में गहरा आकर्षण होता है"[2] एक शाम नील ने कहा, "शकुंतला, तिष्य रक्षिता, संघमित्रा, जहाँआरा, लिजा और सोफी गहरे अँधेरे में झिमिलाती ऐसी ही कुछ अलोककृतियाँ हैं। अपने समय की जिन दो व्यथित स्त्रियों का संताप मुझे बेधता है, वे हैं स्वेतलाना और जैकी। पहली ने अकेली बेटी होने के नाते स्तालिन के तीनों रूप देखे - निरंकुश शासक, क्रूर पति और कठोर पिता। आत्महत्या की अंधे मोड़ तक ले जानेवाली अपनी माँ की दारुण वेदना भी उसने देखी। अपनी आत्मा पर कसे दु:ख के शिकंजे को उसने अपने परिवेश के साथ जोड़ा और पति-बच्चे समेत उसे छोड़ दिया। क्या नया देश, नई संस्कृति और नया परिवार उसके भीतर हाहाकार को मिटा पाया?

शांति की सतत् तलाश में क्रेमलिन की यह अभिशप्त राजकन्या एक बार फिर अपने जनम के देश पहुँची पर कुछ ही दिनों में अपनी मनोव्यथा से थककर

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.11
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.45

उसने फिर नये देश का वरण कर लिया। इसके दूसरी ओर जैकी है, जिसे हर तरह का सुख और तृप्ति मिली। फिर एकाएक नियति ने एक क्रूर निर्णय लिया और उसे पीड़ा के झुलझते मरूस्थल में भटकने के लिए छोड़ दिया...।"

आधुनिक समाज में आत्महत्या कानूनन अपराध है। हमारे यहाँ इसे 'पाप' की संज्ञा इस धारणा से दी गई थी कि जीवन देने या लेने का अधिकार ईश्वर को ही है, मनुष्य को नहीं। अब वैज्ञानिक युग में भी यह धारणा पूरी तरह खंडित नहीं हो सकी है। क्योंकि चिकित्सा विज्ञान की चमत्कारिक उन्नति के बावजूद जन्म-दर और मृत्यु-दर ही कम की जा सकती है। जन्म-मृत्यु पर पूरा नियंत्रण पाना संभव नहीं। जरूरी नहीं कि आत्महत्या का प्रयास करने वाला व्यक्ति मर ही जाए। यह जरूरी नहीं कि अच्छे-से-अच्छे चिकित्सा मरते हुए को बचा सके। अत: आत्महत्या को आज भी व्यक्ति के अधिकार में न रहने देकर उसे 'पाप' की जगह कानूनी अपराध करार दे दिया गया। तो इस कानून से भी आम आदमी को परिचित कराया जाना चाहिए।

भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अनुसार जो व्यक्ति आत्महत्या में सहायक सिद्ध हो जाए उसे 10 वर्ष तक कैद की सजा, जुर्माने के साथ या बिना जुर्माने के दी जा सकती है। आत्महत्या का प्रयास करने वाले व्यक्ति को धारा 309 के अनुसार एक साल तक की साधाराण कैद अथवा जुर्माने अथवा दोनों की सजा देने का प्रावधान है।

श्री दुर्खोम के 'Le Suicide' नामक पुस्तक आत्महत्या पर एक अनुपम पुस्तक मानी जाती है। उनका कथन है कि – "मानसिक कारण, वंशानुसंक्रमण निर्धनता, निराशा, प्रेम में असफल आदि के आधार पर आत्महत्या की वास्तविक व्याख्या कदापि संभव नहीं क्योंकि ये सभी कारक वैयक्तिक हैं। जबकि आत्महत्या मूल रूप से एक सामाजिक घटना है।"[1]

जब व्यक्ति का व्यक्तित्व आत्महत्या को अपना न ले तब तक आत्महत्या का प्रभाव किसी व्यक्ति पर नहीं पड़ता है।

---

[1] सामाजिक विचारधारा – रविन्द्र नाथ मुकर्जी, पृ.148

5. सामाजिक पतन

समाज में अच्छे व बुरे व्यक्तियों के कर्त्तव्य का मूल्यांकन भी समाज द्वारा ही किया जाता है। जहाँ समाज बुरे व्यक्तियों को उनके किए गये कार्य के लिए उन्हें सजा देता है। वहाँ अच्छे कार्य करने वालों को सराहा भी जाता है। इससे बुरे कार्य करने वालों पर अंकुश लगता है तो अच्छे कार्य करने वालों का हौसला बढ़ता है तथा एक आदर्श समाज का निर्माण होता है। मनुष्य समाज में रहता है। समाज के साथ उसे अपना संबंध बनाए रखना पड़ता है क्योंकि इसके बिना जीवित रहने के संघर्ष में वह कदापि विजयी नहीं हो सकता। समाज मनुष्यों का समष्टिकृत या सामूहिक रूप है और उस रूप में ही वह प्रकृति के साथ संघर्ष कर सकता और जीवित रह सकता है। इसलिए प्रकृति के विरुद्ध करके अपनी जाति की सुरक्षा के लिए समाज एक उपयोगी साधन है।

विवेच्य उपन्यास में जब भोला अपनी चाह के साथ मायानगरी में प्रवेश करता है तो उसे मायानगरी नाजुक और लुभावनी लगती है। इसलिए वह कहना है कि – "जो शहर रोजी दे दे, वह महान ही हो सकता है।"[1]

धीरे-धीरे भोला अपनी चाह को पूर्ण रूप प्रदान करने के लिए अंडरवर्ल्ड में खुद को शामिल करता है। अंडरवर्ल्ड के भाइयों के रहन-सहन, वेशभूषा, रोज नयी गाड़ी लेकर घूमना उसे नाजुक बना देता है। मुर्तजा को कितना वेतन मिलता होगा, उसके कपड़े तो तड़क-भड़कवाले थे ही, गले में सोने की मोटी चेन और उँगलियों में तीन अँगुठियाँ भी थीं। गाड़ी भी रोज बदलती थी। भोला सोचने लगा।

मुर्तजा ने इलियास भाई से कहा – "यही है अपना भोला..."[2]

भोला को यह देखकर ताज्जुब हुआ कि इलियास के पीछे मुर्तजा, गफूर, किट्टी और आप्टे की तरह शकूर भाई भी विनम्र भाव से खड़े थे। फर्क सिर्फ इतना

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.32
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.39

था कि उनकी विनम्रता दूसरों की तरह गहरी एवं पारदर्शी नहीं थी। क्योंकि भोला को भाइयों के बारे में पता नहीं था।

भोला अंडरवर्ल्ड के भाइयों के साथ रहते हुए उन लोगों के धंधे के बारे में जानने के साथ-साथ अपने को उसी क्षेत्र में प्रवेश के लिए अंदर साहस जुटा रहा था। धीरे-धीरे यह साहस बढ़ता गया।

जब भोला अंडरवर्ल्ड का पच्चीस लाख के पैकेट और जख्मी गफूर को बचाने के लिए अपने को खतरे में डाला यह उसकी कर्तव्यपरायणता और वफादारी के उजले सबूत माने गए। इस प्रकार भोला अंडरवर्ल्ड में शामिल हो कर अपनी जगह बना लेता है। अपने को भोला सेठ बना लेता है।

समाज, व्यक्ति के जीवन में आत्मविश्वास पैदा करता है। जैसे भोला मायानगरी के समाज में अपने आपको एक अपराधी मानता है। क्योंकि वह समाज के नियम का उल्लंघन करके समाज में नशीले पदार्थ को प्रचलित करता है।

महानगरीय समाज में अंडरवर्ल्ड का पनपना सहज साध्य था क्योंकि अंडरवर्ल्ड के आदमी अपनी धंधे का विस्तार करने के लिए पुलिस को भी अपने हाथ में कर लेते हैं। राजनीतिक नेता तो इन लोगों के साथ अपने घर के सदस्य जैसे संबंध रखते हैं। क्योंकि किसी को रास्ते से हटाने का, और शत्रुओं को अपने से दूर फेंकने का काम इन लोगों से करवाते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अंडरवर्ल्ड के भाइयों ने समाज को नशीले पदार्थ फैला कर नगरीय समाज के परिवेश को कलंकित करते रहते हैं। इससे समाज पतन के साथ व्यक्ति का भी पतन हो रहा है।

महानगर में सामाजिक पतन का दूसरा कारण माफिया है। जो नगरों में आज ज्यादा प्रचलित है। सुपारी द्वारा व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति को मारता, डराता और उसका शोषण भी करता रहता है। आज के सुपारी युग में जीना मायानगरी की नियति बन चुकी है। इसलिए भोला इन सब कार्य से हिचकिचाकर अपने दोस्त नील के पास जा

कर कहता है कि –"मैंने कैसे-कैसे अपराध किए हैं और उनके कैसे-कैसे नतीजे निकले हैं।"[1]

"मैं और गफूर का भागीदार था, जब यूनियन नेता को ठिकने लगाया गया। उसके घर में फाकों की नौबत आ गई। उसकी जोरू ने दो बच्चों के साथ कीड़े मारने की दवा पीकर दुनिया छोड़ दी। जवान ननद भी इस समझौते में शामिल थी, पर नसीब की मार, वह बच गई। ...अभी सुना, वह रातरानी में नंगे नाच की नौकरी पर लग गई है – शालू की जगह। ... एक ईमानदार आदमी का हँसता-खेलता कुटुंब हमारे हाथों उजड़ गया। उसकी आह नहीं लगेगी क्या?"[2]

बंबई के अंडरवर्ल्ड के भाइयों के साथ भोला अपराध करता रहता है। "भोला नशीले जहर से देश की नई पीढ़ी को मारता है। कानून के ढाँचे में न सिर्फ घुन बन कर उसे खोखला करते हो, बल्कि सरे बाजार उसे जूते-तले रौंदते भी हो।"[3]

इस प्रकार भोला अपने धंधे के जरिए समाज को पतन की ओर लेने के साथ समाज में रहने वाली आम जनता को भी पतन की ओर खींच लेता है। जब समाज में व्यक्ति का पतन होगा स्वाभाविक है कि समाज का भी पतन होगा।

समाज व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रचार और प्रसार करने पर बल देता है। आधुनिक युग में तो इस कर्त्तव्य का बहुत ज्यादा महत्व है क्योंकि जबतक मनुष्य को सामाजिक क्षेत्र में स्वतंत्रता व्यक्तिगत नहीं होगी वह किसी अन्य क्षेत्र में भी आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता आधुनिक मानवीय जीवन में परम आवश्यक है यह बात दूसरी है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता से पारिवारिक जीवन में आपस में तनाव का वातावरण उत्पन्न हो सकता है। परन्तु इसकी अनिवार्यता को किसी भी कीमत पर नकारा नहीं जा सकता। देखा जाए तो समाज अपनी सीमाओं में रह कर व्यक्ति को स्वतंत्रता प्रदान करता है। इससे व्यक्ति का स्वार्थपूर्ण नहीं

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.156
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.156
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.145

होता। इसलिए वह समाज के नियम का उल्लंघन करता रहता है और समाज का पतन होता है।

एक प्रकार से देखा जए तो यौन-संबंध भी सामाजिक पतन का कारण है। इस उपन्यास में शिल्पा, यास्मीन, पारूल, सौदामिनि, ब्लॉसम आदि अधेड़ महिलाएँ अपनी काम तृप्ति के लिए जिगोलो को पास बुलाती हैं। इन के द्वारा अपनी कामेच्छा की तृप्ति करती हैं। ये महिलाएँ अपनी काम वासना की तृप्ति के लिए सामाजिक नियम को नहीं मानती इसलिए समाज का पतन होता है।

5.1 विषम सामाजिक रूप

जब मनुष्य समाज के नियमों का उल्लंघन करके कुछ असामाजिक कार्य में लिप्त रहते हैं तब समाज में विषम रूप की सृष्टि होती है। आज मनुष्य के द्वारा बनाये गये समाज को मनुष्य ही नष्ट करने पर तुले हैं। समाज अपनी सीमाओं में रह कर मनुष्य को मुक्ति प्रदान करता है। मनुष्य इस सीमा से आगे जाना चाहता है। समाज के नियम मनुष्य को विभिन्न प्रकार के असामाजिक कार्य से रोकते हैं।

महानगर के समाज में नारी-पुरुष मुक्त रूप से एक दूसरे के प्रति आकर्षण होते हैं। जब यह आकर्षण विकर्षण में परिणत होता है तो समाज में विषम रूप दिखाई देता है। नील और किरन का प्यार समाज स्वीकृत है लेकिन किरन विवाह से पूर्व गर्भवती होना ये समाज अस्वीकृति है। यहाँ समाज में युवक और युवती के दोनों ओर से सहमति होने पर भी यौन संबंध स्थापित नहीं कर सकते है। क्योंकि समाज संस्कार चाहता है।

इस प्रकार कुमुद "यौवन की अंतिम पारी में पहुँची अकेली स्त्री नई पोशाक पहने, तो क्या उसे वाजिब प्रशंसा नहीं मिलनी चाहिए?"[1] कुमुद एक ऐसी नारी थी जो अपनी प्रेम भरी बातों से युवक को फाँसते हुए कहती है कि –"तुम्हारे जैसा सजीला युवक किताबों से अपना सिर खपये यह बंबई के युवती समाज का अपमान

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.48

है।"[1] इस प्रकार कुमुद अपने प्रेम में नील को फँसाने में सफल हो जाती है। कुमुद का पेशा ऐसा था कि – वह प्रेम भरी बातों से युवक को फँसा कर उससे अपनी काम वासना की तृप्ति करती थी। नील के मित्र होने के नाते कुमुद उसकी यौन-गुरु हो गई थी और उसे यौन शिक्षा देती है। एक अविवाहिता, कुँआरी कन्या कुमुद नगरों के समाज में या पुरुष प्रधान समाज में पुरुष को यौन शिक्षा देती है। परम्परा से यौन शोषण का स्वीकार हो कर आ रही स्त्री आज पुरुष को यौन शिक्षा देती है।

भारतीय पारम्परिक समाज में चुंबन विषम रूप सृष्टि करता है। जैसे "मानवीय सभ्यता के विकास में वह दिन क्रांतिकारी था, जब स्त्री और पुरुष ने एक दूसरे को पहली बार अधरों पर चुमा।"[2] लेकिन आधुनिक युग में स्त्री-पुरुष पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को अपना कर चुंबन को प्यार की पहली निशानी मानते हैं।

महानगर के गरीब घर की महिलाएँ अपने परिवार और अपनी भूख मिटाने के लिए वेश्यावृत्ति अपनाने में बाध्य हो ही जाती हैं। समाज में निम्नवर्ग ही हमेशा शोषण का शिकार होता है। पूँजीपति वर्ग अपने स्वार्थ के लिए निम्नवर्ग का शोषण करता रहता है। हमारे समाज में वेश्यावृत्ति एक गंभीर समस्या बन गयी है जो परम्परा से चली आ रही है। सुरेन्द्र वर्मा के विवेच्य उपन्यास में नगरों के अधेड़-धनाड्य स्त्रियाँ अपनी कामवृत्ति की तृप्ति के लिए बाजार के जिगोलो का सहारा लेती हैं। उससे अपनी शारीरिक इच्छा की तुष्टि करती हैं। यह एक ऐसी समस्या है जो नगरों में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के आगमन के कारण भारतीय महानगरों में प्रवेश कर चुकी है। पहले भारतीय समाज में पुरुषों की कामवृत्ति की तृप्ति के लिए पुरुष वेश्यालय गमन करता था। अब आधुनिक समाज में पाश्चात्य दृष्टि के कारण पुरुष जिगोलो बन कर स्त्रियों के पास जाता है। इस उपन्यास के माध्यम से हमें महानगरीय समाज के नर-नारी के संपर्क की कामवृत्ति की समस्या सामने आ रही है। महानगरों के होटलों में पुरुषों की कामेच्छा की तुष्टि के लिए नारियों को धंधे में रखा जाता है लेकिन अब होटलों में पूँजीपति वर्ग की महिलाओं

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.48
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.60

के लिए भी पुरुष वेश्याओं को धंधे में रखा जा रहा है। जैसे ब्लॉसम नील के पास जाती है और कहती है कि –"तुम किसी का इंतजार कर रहे हो?"[1] उसने हामी में सिर हिलाया।

"मैं भी इंतजार कर रही थी, बेकार ही है।"[2]

इस प्रकार दोनों बात करते हुए ब्लॉसम नील को घर ले जाती है और नील से शारीरिक संपर्क से खुद को तृप्त करती है।

भारतीय परंपरिक सभ्यता में स्त्री-पुरुष दोनों उन्मुक्त रूप से चुंबन नहीं दे सकते थे। लेकिन पाश्चात्य सभ्यता में दो प्रेमियों के बीच उन्मुक्त चुंबन कही भी दे सकता है। इस सभ्यता को पश्चिमी संस्कृति की देन माना जाता है। आज यह गाँव, शहर, नगर और महानगरों में बड़ी तीव्र गति से अपना पैर फैला चुका है।

विवाह एक सामाजिक प्रथा है। इस संस्था से स्त्री-पुरुष शारीरिक संपर्क रख सकते हैं और परिवार सृष्टि कर सकते हैं लेकिन आधुनिक युग के समाज में विवाहपूर्व यौन संबंध और विवाहेतर संबंध भी स्त्रियाँ अन्य पुरुषों के साथ रखती हैं। विवेच्य उपन्यास में यास्मीन अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए विवाहेतर संपर्क रखती है। इसी प्रकार शिल्पा, सौदामिनी, पारूल आदि स्त्रियाँ वैवाहिक जीवन में खुश नहीं हैं। विवाह के बाद स्त्री चाहती है कि – स्वामी उसे शारीरिक और मानसिक रूप से खुश रखे। इन अधेड़-धनाड्य महिलायों के पतियों के होते हुए भी यह नारियाँ बाजार के पुरुष से शारीरिक संबंध रखती है।

वैवाहिक जीवन में खुश न होने के कारण पारूल, नील से प्रेम करती है। पारूल एकपल में नील से प्यार कर बैठती है। पारूल अपनी कामवासना की संतुष्टि के लिए नील से शारीरिक संपर्क रखती है। इस शारीरिक संपर्क की चरम सीमा के बाद पारूल कहती हैं कि – "नील, तुमने मुझे जिंदगी का पहला आर्गेज्म दिया

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.74
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.74

है…"[1] इसलिए पारूल अपने गले से कार्टियर की माला उतारकर और नील के गले में डाल देती है।

सामान्यत: भारतीय परम्परा में विवाह के बाद स्त्री बंधन में जकड़ जाती है। स्त्री के ऊपर स्वामी का पूरा अधिकार रहता है। लेकिन पारूल विवाहिता औरत होने के बावजूद कामनीय दृष्टि से नील को कहती है कि – "मेरी माँग भर दो।"[2] मुझे ऐसा लगता है कि - उपन्यासकार डॉ. वर्मा जी ने इस उपन्यास में जिस कुत्सित सैक्स का चित्रण किया है वह आज के नगरों में विद्यमान है। इस उपन्यास में नारी पात्र अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए न समाज को, न परिवार की मर्यादा को देखती है। इन स्त्रियों का एक मात्र लक्ष्य काम की तृप्ति है। शिल्पा कहती हैं कि " मेरी अपनी भी जरूरत है।"[3] इस से बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि – नारी (आधेड़ स्त्री) काम के लिए अपने पति, बच्चे, परिवार किसी के बारे में नहीं सोचती।

सुरेन्द्र वर्मा जी के उपन्यास में पारूल अपने पति को तलाक नहीं देती, न वह विधवा स्त्री है। वह सधवा स्त्री होने के बावजूद शहर के दूसरे पुरुष के साथ शारीरिक सम्पर्क रखती है। और कहती है कि –"मैं एक बिस्तर पर रात भर तुम्हारे बगल में सोना चाहती हूँ। मैं देखना चाहती हूँ कि अपने प्रेमी के साथ जागने पर सुबह का उजाला कैसा लगता है…"[4]

प्रेम विवाह तथा अंतर्जातिय विवाह भी आधुनिक समाज के लिए एक समस्या बन कर उभरा है। वास्तव में प्रेम विवाह मन चले युवक-युवतियों का आत्मिक समझौता है। इस संबंध में उन्होंने अपने माता-पिता के विचारों को स्वीकृति नहीं दी है। यह बात दूसरी है कि समाज भले ही उन्हें प्रेम-विवाह करने की मंजूरी नहीं दे परन्तु कानून तो स्वीकृति देता है। प्रेम-विवाह प्राय: असफल होते ही दिखाई देते हैं। इससे न केवल मन-मुटाव होते हैं, बल्कि तलाक तक नौबत आ जाती है। जैसे नील और किरन का संबंध हम देख सकते हैं।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.122
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.136
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.138

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार व रिश्वतखोरी ने भी मनुष्य के मानस को बदल दिया है। वह काम करते नहीं भी करना चाहता है। कहावत है कि - जब मनुष्य को खाने के लिए अच्छी मिठायाँ मिलेंगी तो वह रूखी रोटी से क्यों माथा मारेगा। इसका प्रचलन पूँजीपति व बड़े-बड़े नेताओं ने किया है। परन्तु अब यह अमान्य हो गया है। जब कोई परम्परा समाज में चलती है तो उसे मिटाने के लिए कई प्रयास किये जाते हैं। लेकिन वह मिटती नहीं है। जैसे इस उपन्यास में अंडरवर्ल्ड के इम्तियाज भाई अपने धंधे के विस्तार के लिए देश के सुरक्षा कर्मी कामथ को रिश्वत देता है। क्योंकि सुरक्षा कर्मियों के बाहुछाया के तले अपने धंधे का विस्तार करना सुरक्षित होता है।

मेहताबजी, नील को अपने मकसद के लिए रखते हुए कहती है कि –"मैंने तुम्हें मानसिक शांति की तलाश में मदद के लिए रखा था। लेकिन पिछले कुछ महीनों से मेरा नताव बढ़ने लगा है। तुम्हारी इस बदली जीवन-शैली ने मुझे परेशान कर दिया है।"[1]

6. मूल्यों में गिरावट

मानव विवेकशील प्राणी है। वह अपनी विवेकशक्ति के अनुसार मूल्यों को निर्धारित करता है। सामाजिक जीवन के मूल्य उसके विकास की सामान्य प्रक्रिया है। समाज में रहते हुए मानव बाजार की हर चीज़ के मूल्यों को बटोरता है। "हम जिस पूँजीवादी समाज में जी रहे हैं उसमें हमारे सामने पेट भरने का एक ही रास्ता है - अपनी किसी काबिलयत को बाजार में बेच पाना।"[2]

समाज में हर आदमी के पास कोई-न-कोई काबलियत होती है जो उसके पेट भरने के लिए सहायक होती है।

आजकल नगरों में कंपनियाँ बाजार की माँग के मुताबिक उत्पादन की सप्लाई करती हैं। यदि समाज की माँग के मुताबिक अधिक उत्पादन होता है तो मूल्यों में गिरावट होती है। हमारे देश में बाजार की माँग हमेशा अधिक रहती है।

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.147

[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.145

लेकिन सप्लाई बहुत कम होती है। कभी-कभी मूल्यों में गिरावट आ जाती है कभी बढ़ जाती है। जैसे जयंत कहता है कि – “हमारे देश में खिलौनों का बाजार 25 फीसदी सालाना के हिसाब से बढ़ रहा है।”[1]

खिलौने बच्चों की दुनिया को वास्तविक बनाते हैं, जो तेजी से बड़े न होने के कारण वयस्क संसार की क्रियाशीलता व उत्तेजना में हिस्सा नहीं ले पाते। इसलिए मिनीएचर, पिस्तौले, टेंकर, फाइटर प्लेन, रोसिंग कर उन्हें आकर्षित करती हैं। यह मुश्किल और कैपिटल-इंटसिव उद्योग है। उत्पादन में परिवर्तन तेज होता है। दूसरी तरफ भारतीय मध्यवर्ग को इस धारणा को स्वीकार करने में समय लग रहा है कि खिलौने बच्चों के भावात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अगर माता-पिता बच्चों के साथ थोड़ा समय बिताएँ, तो बाजार में मिलने वाले खिलौनों का बेहतर उपयोग हो सकता है। एक सर्वेक्षण से मालूम हुआ है कि ग्लेमरस खिलौने ज्यादा बिकते हैं। खिलौने भी प्रतिष्ठा और स्टेटस के प्रतीक बन रहे हैं। बार्बी डॉल्स, कैसिल ग्रे स्कल और जी.आई.जो जैसे खिलौनों के समृद्ध माता-पिता सबसे ज्यादा भोले खरीदार बनते हैं। ऊँची कीमत के अलावा उनके लिए उन खिलौनों का और कोई मूल्य नहीं।”[2]

नील अपनी क्लाइंटों से ज्यादा पैसा लेता है। नील अपनी क्ल्यांइट करूणा जी से बात करते हुए कहता है कि - “आपको नए रेट्स पता है न?एक बुकिंग के तीन हजार और वीक एंड के छह...।”

करुणा जी ने ताज्जुब से पूछा, “रेट कब से बढ़ा दिए?”

“नये बजट के साथ।”

“ज्यादा है यार !”

“करुणा जी सब्जी, दूध, पेट्रोल सबके दाम बढ़ गए हैं। सुबह के अखबार से लेकर रात की व्हिस्की तक मँहगाई ने किसी को नहीं छोड़ा। अब बताइए, मुझे तो

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.106
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.106

गुजर करनी है न! तीन हजार का तो आप पान खा कर थूक देते हैं। आप अपने दिल पर हाथ रखकर कह दीजिए, क्या मैं इतनी उतरन के लायक नहीं?"

भोला अपने धंधे को नशीले पदार्थों का वितरण करता है। इसकी दुनिया में माँग ज्यादा है। इसलिए महानगरें में इसका प्रचलन अधिक होता जा रहा है।

नगरों में बाजार की माँग ही उत्पादन शक्ति को बढ़ाती है। बाजार की माँग के अनुसार बाजार के मूल्यों में उत्थान पतन होता रहता है।

7. भाषाई एवं रहन-सहन की क्षति

भाषा मूलत: मानव उपलब्धि है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययनोपरान्त यह ज्ञात होता है कि मानव जैसे-जैसे विभिन्न अनुभवों से गुजरता है, जैसे-जैसे उसकी स्थितियाँ परिवर्तित होती जाती हैं वैसे-वैसे भाषा का स्वरूप भी परिवर्तित होता जाता है। "भाषा भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। यह ऐसे सार्थक शब्द समूहों का नाम है, जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित हो कर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होते हैं।"[1]

"साधारणत: बोलचाल की भाषा की अपेक्षा साहित्य की भाषा अधिक कलात्मक और प्रभावशाली होती है।" काव्य भाषा में शिल्प का उपयोग होता है। उसमें ललित कल्पना की क्रीड़ा होती है, जो श्रोता के मन का अनुरंजन करती है। इस प्रकार की भाषा का अपना वास्तविक किन्तु सीमित महत्व है।"[2]

गद्य के प्रारंभिक युग में भाषा का रूप उतना विकसित नहीं था, पर धीरे-धीरे भाषा विकसित होती गयी। ऐयारी और तिलिस्म प्रधान उपन्यासों की भाषा सीधे-सादी होती है। कथाकार का उद्देश्य होता है कि – रोचक कथा कहना। इसके लिए सरल पर गतिमान भाषा का प्रयोग उचित ही था। परवर्ती उपन्यासोंकारों ने कथात्मक रोचकता के अतिरिक्त अपनी रचनाओं में अन्य प्रकार की नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। इसके लिए उन्होंने साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है।

---

[1] साहित्यालोचन – डॉ. श्यामसुन्दर दास, पृ.231
[2] आरस्तू का काव्य शास्त्र – डॉ. नगेन्द्र, पृ.142

किसी पात्र को गुणों और कार्यों तथा किसी स्थान का वर्णन करते समय उपन्यासकार उस कार्य या पात्र के अनुरूप भाषा का प्रयोग करता है। इस कारण जैसे-जैसे सामाजिक उपन्यास कम और व्यक्तिगत समस्याओं के उपन्यास अधिक लिखे जाने लगे, भाषा भी जटिल और दुर्बोध होती गयी है। स्थितियों के साथ-साथ भाषा में भी परिवर्तन होता है। उपमाएँ, प्रतीक, मुहावरे सभी में परिवर्तन होता है। केवल रोचकता के लिए लिखे गये उपन्यासों की भाषा में हल्कापन और सरलता होगी और चमत्कार के उद्देश्य से लिखे गये उपन्यास की भाषा साहित्यिक होगी। यदि उपन्यास का उद्देश्य सामाजिक होता तो भाषा बोलचाल की होगी। पर यदि उपन्यास मानव-मन के अंतर्गत के विश्लेषण का प्रयास करेगा तो उसकी भाषा प्रतीकात्मक और अपेक्षाकृत जटिल हो जायेगी।

इस प्रकार महानगरीय जीवन के बारे में लिखे गये उपन्यास की भाषा नगरों में रहने वाले आम जनता की भाषा, आटोरिक्शा वालों की भाषा के प्रयोग की होगी।

इस प्रकार उपन्यास में नील सुंदर, शिक्षित स्वस्थ युवक था। उसे देखते ही किरन के अल्हड़ यौवन या कुआरापन हथेली (हाथों) से छूट जाता है। इसलिए वह गर्भवती हो जाती है। जब इस बात का डॉ. शर्मा को पता चलता है। तब वह गुस्से में कहते हैं कि – "नीच... कुकर्मी.... लम्पट..." जिस पत्तल में खाया उसी में छेद कर दिया?"[1]

साधारणत: नगरों में स्त्रियाँ अपने पति से कामवासना से संतुष्ट नहीं हैं। इसलिए वह नगर की जिगोलो को अपने घर बुलाकर कामवासना की तुष्टि करती हैं। इस कामवासना में उत्तेजित शिल्पा नगर की जिगोलो नील से शारीरिक भूख की तृप्ति करते समय शिल्पा का पति पकड़ लेता है और कहता है कि –"एक मरद काफी नहीं है तेरे लिए?" ".... गू की ढेरी में मुँह मारते बच्चों के बारे में नहीं सोचा?"[2]

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.10
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142

जब शिल्पा ने पर्स से नोट निकाले और सोफे पर पड़ी नील की कमीज की जेब में रख दिए, पुरुष स्तब्ध भाव से यह कार्य-व्यापार देख रहा था। शिल्पा के जाने के बाद शिल्पा का पति नील से पूछता है कि – "इसने तुम्हें रोकड़ा क्यों दिया?"[1]

"यह मेरा पेशा है।" उसने धीमे स्वर में कहा।

इस बार पुरुष चेहरे पर कई भाव आए और गए।

"कुत्ते, कमीना, हरामजादा... शक्ल से तो पढ़ा लिखा लगता है। कोई नौकरी क्यों नहीं ढूँढ लेता?"[2]

"नौकरी में पैसे बहुत कम हैं।"[3]

"हाँ हराम की कमाई की आदत जो पड़ गयी है।"[4]

"हराम की नहीं है," उसने स्थिर स्वर में कहा, "इसमें भी बहुत मेहनत है।.... खबरदार जी अब गाली दी, तो..."[5]

उपभोक्तावादी समाज में जीने के लिए एक ही शर्त है - अपनी किसी योग्यता को बाजार में बेच पाना। इसलिए नील अपनी योग्यता को बेचता रहता है। नील अपनी मनमानी ढंग से चलते हुए बुकिंग ही कैसिल नहीं करता है। इससे गुस्सा हो कर शाहनाज कहती है कि – "स्टैल मल्टी नेशनल की सेक्सन हेड है। तुम्हें यकीन है उसके पीछे कोई और नहीं?... तुम्हारी कोई अपनी क्लांइट?" तुमने मुझे आकलैंड रोड की रंडी समझा है?"[6] नील बिफर उठा।

"नील" शहनाज भड़क उठी, "तमीज से बात करो।"[7]

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.143
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.143
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.143
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.143
[5] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.143
[6] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.184
[7] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.184

“तमीज़ स्टैल की और तुम्हारी कंठ में है।”[1]

“यू प्रिक...” शहनाज क्रोध से थरथरा गई, “गेट आउट!”[2]

माना जाता है कि स्त्री-पुरुष के दोनों ओर से आकर्षण ही प्रेम है। इन दोनों में यौनिक आकर्षण ही सहजीवन जीने के लिए विवश करता है। लेकिन इस उपन्यास में पारूल और नील दोनों आकर्षित होते हैं। परन्तु नील जब से नैन को देखता है तो पारूल के प्रति उसका आकर्षण विकर्षण में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए नील नैन से प्यार करने लगता है। नील पारूल से कहता है कि “मैं एक हफ्ते के अंदर शहर छोड़कर जा रहा हूँ।”[3] “मैं दिल्ली जा रहा हूँ।”[4] मैं शादी कर रहा हूँ।”[5]

इस बात को सुन कर पारूल के चेहरे का रंग उड़ने लगता है। तब पारूल कहती है कि – “कुत्ता, कमीना, हरामजादा.... भीगी आँखों के लाल होने के साथ पारूल उठने लगी। “मेरे घर में आग लगाकर अपना घर बसाने चला है...”[6] जन्नाटे जन्नाटे के थप्पड़ से नील सुन्न रह गया, मैं तेरा खून पी जाऊँगी... मैं तेरी बोटी-बोटी काटकर चील-कौवों को खिला दूँगी...”[7]

“साले सड़क के कुत्ते को आसमान पर बैठा दिया... और अब मुझसे अलग अपना भविष्य बना रहा है...।”[8]

नील अपने क्लाइंट के लिए डायरी का प्रयोग करता था। जब वह डायरी गायतोडे के सामने प्रमाण के रूप में आ जाती है तो वह कहता है कि – “आज तक तुम खाली चोदू थे। अब गाँडू भी हो गए।”[9]

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.184
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.184
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.211
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.211
[5] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.211
[6] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.212
[7] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.212
[8] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.212
[9] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.234

क्योंकि उस डायरी में नील की क्लाइंटों का नाम था। गायतोंडे ने विचार पूर्ण ढंग से कश छोड़ा और डायरी का पन्ना पढ़ते हुए बुदबुदाया, “शिल्पा, यास्मीन, करूणा, सुमंगल.... आदि”

आधुनिक युग में प्रेम और प्यार कई बार होता है। प्यार में किसी की जीत तो किसी की हार। इस प्रकार नैन प्यार में हार जाती है। तब माहिन कहती है कि – “ उसे तोड़ देने के बाद क्या उम्मीद कर रहे हो? नर्वस ब्रेकडाउन जैसे हो गया है।”[1]

परेश कहता है कि – “तुम दूसरों की नैतिकता के चश्मे से मुझे मत देखो। मैंने डाका नहीं डाला। कानून नहीं तोड़ा। एडल्ट औरत अपनी मर्जी से मेरे पास आई। मैंने किसी को ब्लैकमेल नहीं किया। मनुस्मृति के कौन-से एंगिल से रज़ामंदी का सौदा गुनाह हो गया?”[2]

“रंडी को अपनी रोजी कमाने का कानूनी हक होना चाहिए?”[3]

“बेशक। हम रंडियाँ तुम्हारी उपभोक्तावादी ढाँचों की उपज हैं। जहाँ माँग होगी, वहाँ सप्लाई होगी। पेट की जरूरत के बिना इस पेशे में कोई नहीं आता।”[4]

दो प्रेमियों के बीच कोई तीसरा प्रेमी या प्रेमिका आ जाती है तो प्रेम की त्रिकोणात्मक विकर्षण सृष्टि होती है। इस प्रकार नैन और नील के बीच पारूल घुस कर दो प्रेमियों के विघटन की सृष्टि करती है। पारूल और नील का शारीरिक संपर्क था ये बात जब नैन को पता चलती है तो वह नील से प्रेम नहीं करती है। इसलिए नील गुस्से से पारूल को कहता है कि –“तेरी सड़ी चूत में कितनी डिग्निटी है, जो तू उस मजबूर लड़की को पागल बनाने पर तुली है?... मेरी सारी खुशियाँ तूने मिट्टी में मिला दीं, मुझे फुटपाथ पर ले आई, सह लूँगा लेकिन आखिर बार तुझे

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.237
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.237
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.237
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.237

वार्निंग दे रहा हूँ, बेटी चोद! अगर तू फिर नैन के पास गई, तो तेरा खून पी जाऊँगा...''[1]

भोला ने एकदम ब्रेक लगाया – ''तेरी माँ की....''[2]

गली से तेजी से मोड़ लेकर आए ऑटोरिक्शा से कार पाँच-छह इंच की दूरी पर रुक गई।

''साले, सड़क को मैया की कोख समझा है?'' भोला गुर्राया, ''कहीं से भी निकल आएगा?''[3]

ऑटोरिक्शा वाले ने भोला को घूर कर देखा, तो उसने झपाटे से दरवाजा खोला। पर वह बाहर नहीं निकल पाया था कि ऑटोरिक्शा वाले ने दाँया मोड़ ले लिया। अब भोला के पीछे हार्न बजने लगे थे।

उसने गियर बदल कर कार आगे बढ़ाई।

''साली इतनी तो भीड़ है यहाँ।''[4] उसने बुदबुदाकर कहा।

हमारे समाज में प्रशासन, पुलिस, राजनीति सत्ता, सब माफिया से मिला हुआ है। इसलिए माफिया की अपनी भाषा और रहन सहन, वेश-भूषा है।

''इम्तियाज भाई...'' इस्पेक्टर काम चौड़ी मुस्कान से बाँहे फैलाए हुए आए। दोनों गले मिले। यकायक कामथ स्नेहावेश बीच में ही टूट गया।

''यह क्या है?'' कामथ ने हाथ का 'लोकसत्ता' का पन्ना दिखाया, ''दिन दहाड़े घर में घुसकर हिसाब बराबर कर लिया? सारा प्रेस हम पर ही कीचढ़ उछाल

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.240
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.64
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.64
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.64

रहा है। आज ही एसेंबली में सवाल उठेगा। होम मिनिस्टर की पाद निकल जाएगी और वे साला हमारी गाँड में डंडा कर देगा.. दिस इज टू मच यार !"[1]

इस उपन्यास में सुरेन्द्र वर्मा ने कलात्मक साहित्यिक भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, मुहावरे की भाषा ओर ब्रजभाषा का भी प्रयोग बहुत सहज ढंग से किया है। जो पाठक की रुचि के साथ मनोरंजन भी करती है। भाषा सरल ढंग से पूरे उपन्यास में पात्रों के द्वारा व्यक्त हुई है। भाषा में गाली गलौज की भरमार है। माफिया, जिगोलो, वेश्याओं आदि की भाषा का बड़ी बेबाकी से प्रयोग किया गया है।

8. व्यवहारिक पतन

साधारणतः मनुष्य, मनुष्य में भाव के आदान-प्रदान के लिए भाषा की जरूरत है। मनुष्य की भाषा के द्वारा ही उसके व्यवहार का पता चलता है। गुरु-शिष्य की परम्परा आदिम काल से चली आ रही है। लेकिन आज का संपर्क गुरु-शिष्य में देखने को नहीं मिलता है। नील संजीदा और चिंतनशील विद्यार्थी था। जिसने डॉ. शर्मा के पास पीएच.डी. (डॉक्टरेट) रजिस्ट्रेशन करवा लिया। डॉ. शर्मा को खुश करने के लिए मन को मारना पड़ता था। धीरे-धीरे कामयाबी मिलने लगी थी। लेकिन किरन के प्यार ने नील की आशा आकांक्षा को पानी में मिला दिया। किरन के गर्भवती होने के कारण नील को शैक्षिक संस्था से निकाल दिया गया और किसी विश्वविद्यालय में खपने नहीं दिया गया। नील अपने गुरु डॉ. शर्मा से क्रोध और प्रतिहिंसा की चिनगारी के साथ कहता है कि – "एक दिन मेरा भी आएगा डॉ. शर्मा! मैं नए सिरे से अपने को जमा कर दिखा दूँगा!"[2]

नील नाश्ते के बाद और लंच से पहले का समय क्लाइंट की खोज के लिए उसे उपयुक्त लगता था। ऐसे समय उम्ररसीदा, अकेली औरत अपने घर के बाझिल अकेलेपन से ऊब कर बाहर निकल आती है। दिन संभावनाओं से भरा हुआ है और उसके चेहरे पर अकेलेपन व तृप्ति की चाहत की परछाइयाँ हैं। जब उसने औरत के

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.221
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.7

पास जाकर उसे संबोधन करते हुए कहा – “हाई... क्या मैं आपका अकेलापन बाँट सकता हूँ?”[1]

स्त्री उलझन भाव से बोली – “क्या मतलब?”

वह अचकचा गया। “जहाँ तक मेरा ख्याल है, आपको किसी का इंतजार है।”[2] और ध्यानाकर्षी होने से बचने के लिए वह नि:शब्द उसके सामने बैठ गया।

“तुम्हारी समस्या क्या है?” नील की अपेक्षा के विपरीत अभी तक स्त्री के मुँह पर मुस्कान नहीं आई थी।

नील के भाथे पर नमी आने लगी। ऐसे शाब्दिक खिलवाड़ के लिए वह तैयार नहीं था। “हम दोनों के पास एक-दूसरे की समस्या का समाधान है”[3] नील ने बारीक अर्थभरी मुसकान से कहा।

“मैं आपको पूरे संतोष की गारंटी देता हूँ।”[4] कहते-कहते वह अटक गया, “मेरे रेट भी वाजिब हैं।”[5]

औरत के चेहरे पर कई रंग आए और गए, पर अंत में दहकता हुआ क्रोध रह गया। “यह कौन-सी जगह है” कैसे-कैसे लोग यहाँ आते हैं? यह इज्जतदार होटल है या कमाठीपुरा?”[6] मेज पर घूँसा मारते हुए वह चीखी।

इससे पता चलता है कि नील अपने जिगोलो रूप को हर कोई औरत के सामने रखता है। क्योंकि उसे पैसे की जरूरत है।

विवाहिता स्त्री होने के बावजूद पारूल नील से विवाहेतर संबंध रखती है। पारूल अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए नील से प्रेम करती है। धीरे-धीरे दोनों में प्रेम संबंध बढ़ते हैं। अंत में पारूल गर्भवती हो जाती है। लेकिन नील नैन के प्यार में

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.100
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.100
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.101
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.101
[5] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.101
[6] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.10

पागल। इसलिए नील कहता है कि – "पारूल तुमने मेरे लिए बहुत किया है। मेरा रोम-रोम तुम्हारे एहसान में डूबा रहेगा। मैं सुबह शाम तुम्हारे मन की शांति के लिए प्रार्थना करूँगा..."[1] लेकिन जब पारूल नैन से मिलती है तो नील की प्रेम बाधा उत्पन्न होती है। इसलिए नील ने उल्लास के साथ ऊँची घोषणा की, "आखिर तुम्हारे पेट में हमारे प्यार की निशानी पल रही है!... डॉर्लिंग, तुम विटामिन-सी ले रही हो न?"[2]

इससे पता चलता है कि नील कितना नीच है। क्योंकि जिसके साथ वह अपना प्यार बांटता रहा और अपनी गरीबी दूर करता रहा। उसके साथ इतना बड़ा धोका देकर उसे कम्पनी के सब युवक और युवतियों की आँखों में झुका दिया।

शिल्पा और नील का शारीरिक संपर्क पकड़े जाने के बाद शिल्पा का पति कहता है कि – "तो मेरे पीछे यह होता है?" इस उम्र में अपना मुँह काला करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई?"[3]

"एक मरद काफी नहीं है तेरे लिए?"[4]

"तुम्हें कुछ नहीं आता। तुम वन-टू-थ्री की तरह पीटी करते हो और सो जाते हो।?"[5]

इस प्रकार शिल्पा और उसके पति के बीच में व्यवहार का पतन दिखाई देता है। जब उसका पति उसे मारने के लिए सोचता है तो शिल्पा कहती है कि – "चिल्ला चिल्लाकर पूरे होटल को इकट्ठा कर लूँगी, पुलिस को फोन कर दूँगी।"[6]

इससे पता चलता है कि – स्त्री-पुरुष की कामवासना की तृप्ति ही पारिवारिक जीवन में सुख का कारण होती है। कामवासना से अतृप्त नारी दूसरे

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.212
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.240
[3] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142
[4] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142
[5] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142
[6] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142

पुरुष से संपर्क रखती है जैसे पारूल, शिल्पा, यास्मीन आदि महिलाएँ। स्त्री और स्वामी के बीच व्यवहार का मुख्य कारण कामवासना है।

इसी प्रकार भोला महानगरों में आ कर अंडरवर्ल्ड में शामिल हो कर अपने व्यवहार को बदलता है। भोला धीरे-धीरे आदत बदलते हुए समाज में नशीले पदार्थों को फैलाकर देश की नई पीढ़ी को मारता था। और समाज में हत्या, अपहरण, माफिया, सुपारी आदि जघन्य असामाजिक कार्य में लिप्त होकर समाज में भिन्न-भिन्न परिस्थिति सृष्टि करता था।

आमतौर पर जो जिस समाज में रहता है उसके प्रभाव से नहीं बच सकता है। परिवेश के वातावरण के अनुसार मानव के व्यवहार में भी परिवर्तन होता है। भोला अंडरवर्ल्ड के वातावरण में रह कर बातों-बातों पर गाली गलौज करता है। जैसे - एक बार गली से तेजी से मोड़ लेकर ऑटोरिक्शा कार के पांच-छह इंच की दूरी पर रुक गई। भोला ने एकदम ब्रेक लगाते हुए कहा कि – "तेरी माँ की...।" साले सड़क को मैया की कोख समझा है।"[1]

महानगर में आदमी अर्थोंपार्जन के लिए अपने को बदल कर दूसरे ढंग से जीना चाहता है। क्योंकि नगरीय परिवेश आदमी को बदलने के लिए बाध्य करता है। नगरीय परिवेश आदमी के ऊपर हावी होने के कारण वह एक निश्चित दिशा की ओर गति करता है। जैसे भोला हनुमान जी के भक्त होने के बावजूद बंबई में लड़कियों को देखते हुए कहता है कि – "नील भैया, यहाँ की कन्याएँ बड़ी मुलायम हैं।"

"हनुमान जी के भक्त को यह सब देखना चाहिए?" नील मुस्कुराया।

"हनुमान जी का भक्त हूँ पर रह तो रासलीला की नगरी में हूँ।.. फिर आज तो यह मॉडर्न पहनावा भी चढ़ गया है।"[2]

---

[1] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.64
[2] दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ.25

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विषमता के यथार्थ को क्रमश: चित्रित करने की उद्दाम कामना मुंशी प्रेमचंद में थी। यदि सही रूप में हिन्दी उपन्यास का आकलन किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद परवर्ती सभी उपन्यासकार आजतक उनके द्वारा निर्मित परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। अन्तर केवल इतना है कि उपन्यासकारों ने शैली जरूर बदली है, पर अपने मूल रूप में प्रेमचंद द्वारा निर्मित व्यापक, संवेदना, सूक्ष्मदर्शी विचार शक्ति को अपनी-अपनी रचनात्मक क्षमता द्वारा प्रस्तुत किया है। मुंशी प्रेमचंद के ज्ञान और अनुभव का क्षेत्र व्यापक था और जिस वैविध्य पूर्ण रचना-संसार का चित्रण उन्होंने किया उसे देख कर लगता है कि वे अपने परवर्ती के लिए कुछ भी छोड़ कर नहीं गए।यह बात दूसरी है कि बाद के उपन्यास लेखकों ने प्रगतिशीलता का आधार ग्रहण किया और अपनी रचना रुचि के अनुसार स्पष्ट मस्तिष्क से समाज के बंद दरवाजों को खोलकर रख दिया। मुंशी प्रेमचंद में वातायन से झंकाने की प्रवृत्ति थी। पर वे सामाजिक नग्नता को स्पष्ट शब्दों में लिखने के लिए हिमायती न थे। बाद में आने वाले उपन्यासकारों ने भारतीय विचार-परंपराओं, सामाजिक विचारों, सिगमंड फ्रायड की कामवादी धारणाओं, कार्लमार्क्स और एंजिल्स के दर्शन से प्रभाव ग्रहण कर अपने-अपने ढंग से उपन्यासों की रचना की।

लेखक अपने चारों ओर घटित घटनाओं को केवल पैनी दृष्टि से देखता ही नहीं है वरन उनके भीतर चल रहे अंतर्द्वंद्व को भी पकड़ने की कोशिश करता है। यह सर्वविदित है कि हिंदी में उपन्यासों की एक सुस्पष्ट परम्परा रही है। हालांकि इस परम्परा को सुदीर्घ नहीं कहा जा सकता और सुरेन्द्र वर्मा की विवेच्य कृति की औपन्यासिक विशेषतओं को ध्यान में रखा जाए तो उनमें शिल्प और कथ्य की

विविधताएँ दिखाई देती हैं। जिनमें बहुत तेज गति से बुनियादी परिवर्तन होते हैं और सुरेन्द्र वर्मा तक आते-आते लगभग पूरा परिदृश्य बदल गया सा प्रतीत होता है। सुरेन्द्र वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य जगत् में एक प्रखर, चेतनाशील एवं सृजनशील कथाकार के रूप में अपनी विशिष्टता स्थापित कर चुके हैं। इनके उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में महानगर बंबई की बाजार वादी अर्थ संस्कृति में बढ़ते हुए अपराध और कुत्सित सेक्स का चित्रण किया है।

उपन्यासकार ने बंबई को केन्द्र में रखकर महानगरीय जीवन के चरित्र के बड़े प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया है। केवल सुरेन्द्र वर्मा नहीं, मटियानी, मनोहर श्याम जोशी, जगदंबा प्रसाद दीक्षित आदि उपन्यासकारों ने अपने-अपने उपन्यास में बंबई की अपराध और गलाजत भरी जिन्दगी, अकूल वैभव के नीचे पलते हुए विलास और व्यभिचार, नारी की अतृप्त और घुटन महानगरीय जीवन की विसंगतियों, अनिश्चितताओं, नैतिक मूल्यों तथा वहाँ के रहन-सहन, भागदौड़, रहस्यमयता, देहव्यापार, षड्यंत्र, अत्याचार, शोषण आदि को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया है।

तीन अध्यायों में विभाजित कर इस लघु शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय में सामाजिक विषमता से तात्पर्य एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भारतीय परंपरागत रूप और भारतीय समाज का आधुनिक रूप की विस्तार से चर्चा करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान स्थिति के साथ धनोपार्जन में अपराध, यौन संबंध, माफ़िया की विस्तार से चर्चा की गयी है।

द्वितीय अध्याय में महानगरीय समाज में किस प्रकार जीवन की विसंगतियों के साथ अनेकानेक समस्याओं तथा जनसंघर्ष के साथ पारिवारिक, शैक्षिक, सामाजिक दबाव के कारण मानव कहाँ-कहाँ भटकते हुए अपना लक्ष्य पूरा नहीं कर पाते हैं, इसका विश्लेषण किया गया है। समाज में असामाजिक कार्य जैसे माफ़िया, अंडरवर्ल्ड, दलाली, वेश्यावृत्ति, पुरुष वेश्यावृत्ति आदि में लिप्त पात्रों का चित्रण किया गया है। भोला आर्थिक परिस्थिति के कारण अंडरवर्ल्ड में शामिल हो जाता है।

इसी प्रकार नील समाज के साथ संघर्ष करता रहता है किन्तु अंत में हार कर अपनी एक काब्लियत को बाजार में बेच कर धनोपार्जन का साधन बनाता है। इसमें दोनों सफल हो जाते हैं। इस प्रकार गफूर, किट्टू, बन्ने, इलियास भाई, नूरभाई, इम्तियाज भाई, मुर्तजा आदि अंडरवर्ल्ड में शामिल हो कर विषम धनोपार्जन का शिकार होते हैं। जिसका अंतिम परिणाम मृत्यु ही होती है।

तृतीय अध्याय में 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में अर्थ केन्द्रित समाज के यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। आदमी अर्थ के पीछे भागते हुए वहाँ पहुँच जाता है जहाँ उसकी कोई पहचान नहीं है। बिना पहचान के आदमी का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है। लेकिन ऐसा माना जाता है कि आदमी को पैसे के लिए ही समाज में प्रतिष्ठा मिलती है। आदमी समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिए अर्थ-लोलुपता को अपनाता है जिससे समाज में विभिनन प्रकार की समस्याएँ होती हैं।

विवेच्य उपन्यास में अर्थ को काम ही माना गया है। अर्थात् अर्थ द्वारा ही काम का विकास होता है। अर्थ और काम दोनों पुरुषार्थ हैं। आज जिस आदमी ने इन दोनों को अपने अंदर संयोजित कर लिया है वही सफल है। नील अर्थोपार्जन के नाम से नगरीय समाज की असंतुष्ट अधेड़-धनाड्य महिलाओं के लिए पुरुष वेश्या बन जाता है। उसका सितारा ऊँचा चढ़ जाता है और फ्लैट, टेलीफोन, कार, विदेशी प्रसाधन और काम सिर्फ़ आत्मा को दबाकर शरीर बेचने का व्यवसाय में लग जाता है। कुमुद से शुरू हो कर यह यात्रा ब्लॉसम, यास्मीन, कुंतल, स्टेला, रंभा, कृष्णा, सौदामिनी, शिल्पा, पारूल, करुणा, फ्रांसीसी-स्विस औरतें, वैशाली, उर्वशी, नैन तक जाती है। इन असंतुष्ट अधेड़ धनाड्य महिलाओं के साथ नील अपना शरीर बेचते हुए जिगोलो (Gigolo) बन जाता है। जो पैसे के लिए वयस्क स्त्रियों की अतृप्त कामेच्छा को संतुष्ट करता है।

अत: साहित्य वह क्षेत्र है जहाँ हम सबसे अधिक मानवीय मूल्यों की बात करते हैं। सहयोग और साझेदारी की कामना करते हैं। जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त करने की वास्तविक चेष्टा करते हैं।

विवेच्य उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में भी पात्रों के निजी मूल्यों की अभिव्यक्ति की गयी है। भोला और नील के चरित्र में व्यक्तिगत-मानव-मूल्य को मानव की गहरी संवेदना के साथ कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। इसमें कोई एक पक्ष स्थित नहीं है और न ही इस उपन्यास में उसे किसी एक मूल्य पर सीमित कर उसका मूल्यांकन करने की कोशिश है।

इस शोध कार्य को करते हुए अपनी समझ और विवेक से मुझे ऐसा लगता है कि महानगरीय समाज में रहने वाले लोग कितनी विडंबना और विसंगति पूर्ण जीवन जीते हैं। धनोपार्जन की आशा लेकर आने वाले ग्रामीण लोग किस तरह बंबई या महानगर की सभ्यता और संस्कृति में अपने को प्रचलित करते हैं। सबसे पहले उन लोगों को महानगर का बाहरी रूप लुभावना और आकर्षक लगता है। लेकिन महानगर के आंतरिक रूप का जब सामना करते हैं तो डर जाते हैं। यह रूप आर्थिक क्रांति से जुड़ा रहता है। यहाँ आने के बाद हर आदमी का एक पथ के सब पथिक बनते हैं। उनका एक ही लक्ष्य है - कमाओ.... कमाओ..... कमाओ...!!।

इस स्थिति को लेकर कोई सामाजिक कार्य करने लगता है तो कोई असामाजिक कार्य करने लगता है। वहाँ अपनी रुचि या काबलियत के अनुसार काम (नौकरी) मिलना बहुत कष्ट साध्य है। इसलिए आदमी पैसे के लिए कोई भी कार्य करने को तैयार हो जाता है। कोई अंडरवर्ल्ड में शामिल होता है तो कोई माफिया में, कोई दलाली करता है तो कोई वेश्यावृत्ति आदि करते रहते हैं।

विवेच्य उपन्यास में दूसरी समस्या यह है कि – जिगोलो (Gigolo) अर्थात् पुरुष वेश्या । उसका अर्थ है - जो पैसे के लिए अतृप्त कामेच्छा की वयस्क स्त्रियों को तृप्त करता है। अर्थात् पैसे के लिए दूसरे की सेवा में नियुक्त यौनकर्मी। प्राचीन काल से वेश्या प्रथा प्रचलित थी लेकिन आज यह प्रथा दो भागों में विकसित हो रही है। (1) स्त्री वेश्या (2) पुरुष वेश्या (Gigolo)। आज की सभ्यता में यह प्रथा (पुरुष वेश्या) अत्यन्त आवश्यक सी हो गयी है। आज धनाढ्य स्त्रियों की सबसे बड़ी समस्या काम की तृप्ति है। अत: जिगोलो (पुरुष वेश्या) का बढ़ावा मिल रहा है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि – विवेच्य उपन्यास ‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ में बाजारवादी अर्थसंस्कृति में बढ़ते हु अपराध और सेक्स का चित्रण किया गया है। हम कह सकते हैं कि “इस एकतरफा रास्ते पर आदमी जिन्दा आता है और मुर्दा जाता है।” उपभोक्ता समाज में जीने की एक ही शर्त है - अपनी योग्यता को बाजार में बेच पाना। छोटे बाजार में छोटी कीमत, बड़े बाजार में ऊँची कीमत। अच्छी कीमत पाने के लिए बाजार की समझ जरूरी है। बाजार की अनुचित समझ से जीते जी मुर्दा बन जाता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।

* * * * *

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

क्रम सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक	संस्करण वर्ष
1.	दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता	सुरेन्द्र वर्मा	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1998

सहायक ग्रंथ सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक	संस्करण वर्ष
1.	सामाजिक विचारधारा (कॉम्ट से मुकर्जी तक)	रवीन्द्र नाथ मुकर्जी	विवेक प्रकाशन, दिल्ली	पुनमुर्द्रण 1988
2.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि	डॉ. स्वर्णलता	विवेक पब्लिकेशन हाऊस, जयपुर	प्रथम संस्करण 1979
3.	भारतीय समाज की संरचना	श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव	लहर प्रकाशन, इलाहाबाद	तृतीय संसकरण 1996
4.	प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन (700 ई से 1000 ई तक)	राघवेन्द्र पान्थरी	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1987
5.	मैं या हम	विश्वनाथ लिमये	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	1978
6.	प्राचीन भारतीय संस्कृति	डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण 1997

7.	मनुस्मृति	संपादक - गंगानाथ झा	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली	1998
8.	महाभारत कालीन समाज	सुखमय भट्टाचार्य	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1966
9.	परम्परा और परिवर्तन	प्रो. श्यामाचरण दुबे	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन	2001
10.	हिन्दी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ	डॉ. बालकृष्ण गुप्त	अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर	प्रथम संस्करण 1978
11.	आधुनिक हिन्दी कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ	डॉ. ज्ञानचंद्र शर्मा	राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1996
12.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन	डॉ. भैरूलाल गर्ग	चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण 1979
13.	आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ	डॉ. सुनील मित्तल	अनुपमा प्रकाशन, बंबई	प्रथम संस्करण 1974
14.	आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना	डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम	कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली	1972
15.	हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य (स्वातंत्र्यतौतर हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में)	डॉ. मोहिनी शर्मा	साहित्यागार जयपुर	1986
16.	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपाल राय	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	पहला आवृत्ति 2009
17.	समाज-मनोविाान	डॉ. एस.एस.माथुर	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	चतुर्थ संस्करण 1976

18.	साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	डॉ. रेखा शर्मा	मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद	प्रथम संस्करण 2000
19.	अपराध और भ्रष्टाचार की राजनीति (सी बी आई के पूर्व अधिकारी के विचार से)	निर्मल कुमार सिंह	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम संस्करण 2000
20.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ग्राम्यजीवन और संस्कृति	राजेन्द्र कुमार		
21.	सांप्रदायिकता एक चुनौती और चेतना	डॉ. यशवन्त विष्ट	महामयी प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम संस्करण 1997
22.	आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य	डॉ. रमेश देशमुख	विद्या प्रकाशन, कानपुर	प्रथम संस्करण 1994
23.	हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी	डॉ. रेखा कुलकर्णी	चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर	प्रथम संस्करण 1994
24.	नितिवाक्यामृत	सोमदेव सूरि	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	1972
25.	मनुस्मृति	कुल्लूक का भाष्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी	1970
26.	दशकुमार चरित	दण्डी	चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी	1948
27.	भारतीय धर्म एवं संस्कृति		बुद्ध प्रकाश, मेरठ	

कोश

1.	हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1)	डॉ. धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी	2007
2.	भारतीय संस्कृति कोश	लीलाधर शर्मा पर्वतीय	राजपाल एंड संस, दिल्ली	1996

अंग्रेजी ग्रंथ सूची

1.	Sociology (Primary Principal)	L.N.Shankar Rao	S.Chanda & Company Ltd., New Delhi	2001

* * * * *